उत्तर भारतीय प्रवर्त्तक गुरुदेव भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज के हीरक जन्म जयन्ती के पावन प्रसंग पर

○ उदार अर्थ सौजन्य

**डॉ. मौजीराम जी जैन, दिल्ली द्वारा**

स्व श्रीमती पुष्पादेवी जैन, एव स्व श्रीमती अशुश्याम की पुण्य स्मृति मे प्रदत्त अर्थ सहयोग से प्रकाशित

○ प्रथमावृत्ति

**वि. सं. २०४८ आश्विन शुक्ल**

**अक्टूबर १९९१**

○ प्राप्ति स्थान

**श्री आत्म-ज्ञान पीठ**

मानसामण्डी (पजाव)

○ मूल्य

**लागत 40/- चालीस रुपये मात्र**

○ फोटो कम्पोजिंग एव मुद्रण

**राजेश सुराना के निर्देशन में**

दिवाकर प्रकाशन, आगरा द्वारा

○ मुख पृष्ठ परिचय

श्रीचन्द सुराना द्वारा सम्पादित सचित्र भक्तामर स्तोत्र के श्लोक २४ का भाव चित्र

साधुता का सच्चा स्वरूप, सेवा मूर्ति

# उत्तर भारतीय प्रवर्तक गुरुदेव श्री पद्मचन्द्र जी महाराज

—उपप्रवर्त्तक अमर मुनि

पूज्य गुरुदेव भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज का जीवन सचमुच पद्म के समान पवित्र, गुण-सौरभ से युक्त ओर सयम की सुषमा से सम्पन्न है।

उनका वाहरी गौरवर्ण, हसमुख चेहरा ओर उस पर बालक सी सहजता, कोमलता, भावुकता तो है ही, जिसे देखकर दर्शक का हृदय श्रद्धा से विनत हो जाता है। उनके जीवन में प्रारम्भ से ही गुरुजनो के प्रति अत्यन्त श्रद्धा, सेवा, विनय ओर सहधर्मि सन्तो के प्रति वत्सलता की भावना भरी है। अहकार, ईर्ष्या, छल आदि दुर्गुण तो उनसे कौसो दूर रहते है। गरीव ओर अमीर सबके प्रति उनके मन मे करुणा ओर कल्याण की भावना है।

आपश्री की प्रेरणा से हरियाणा ओर पजाव के अनेक क्षेत्रों मे धर्मस्थानक बने है। अस्पताल, विद्यालय खुले हैं। गॉव-गॉव मे जेनधर्म की प्रभावना हुई है। जेनधर्म एव ज्ञान प्रचार के लिए आपश्री की सद्प्रेरणा से लाखो रुपयो का साहित्य वाटा गया है।

आपके जीवन की मुख्य तिथियाँ इस प्रकार है—

| | |
|---|---|
| जन्म | वि स १९७४ विजय दशमी, हलालपुर (जिला—सोनीपत) |
| पिता | सुश्रावक सेठ गणेशीलाल जी जेन |
| माता | श्रीमती सुखदेवी जेन |
| दीक्षा दाता | वि सं १९९१ माघ वदि पचमी, आचार्य सम्राट श्री आत्माराम जी महाराज के सुशिष्य पडित श्री हेमचन्द्र जी महाराज। |

आपश्री ने परम श्रद्धेय आचार्य सम्राट श्री आत्माराम जी महाराज, गुरुवर पडित श्री हेमचन्द्र जी महाराज, आचार्य सम्राट श्री आनन्द ऋषि जी महाराज, उपाध्याय श्री अमर मुनि जी महाराज आदि की तन-मन से सेवा करके उनका प्रचुर आशीर्वाद प्राप्त किया है।

## इस प्रकाशन मे विशेष सहयोगी
# डॉ. मौजीराम जी जैन (देहली)

डॉ मौजीराम जी जैन उच्चस्तर के इन्जीनियर तथा अनेक वडे ओद्योगिक सस्थानो मे सर्वोच्च पद पर रहने वाले एक कर्त्तव्य परायण सज्जन ह। आप स्वभाव से वडे ही मृदु, किन्तु प्रशासन मे दृढ़ ओर कुशल हे। सरलता ओर निरभिमानता आपकी वड़ी वेमिसाल है।

आप लाला जौहरीमल जी जेन के सुपुत्र हे। लाला जौहरीमल जी गॉव हलालपुर जिला–सोनीपत के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। आप हमारे श्रद्धेय गुरुदेव श्री भण्डारी जी महाराज के वडे भाई थे। धर्म के प्रति आपकी वडी आस्था थी। आपने कई अस्पताल, स्थानक, स्कूल आदि वनवाये तथा पुण्य कार्यों मे धन का सदुपयोग करते रहते थे।

आप गॉव खेवड़ा निवासी अपने मामा लाला किरोडीमल जी जेन (मित्तल) के गोद गये, जो वडे धार्मिक सत्पुरुप थे।

ला जौहरीमल जी के तीन पुत्र हुए–श्री नेमचन्द जी, डॉ मौजीराम जी तथा श्री रमेशचन्द जी।

डॉ मौजीराम जी वचपन से ही बडे कुशाग्रबुद्धि रहे हे। पिलानी से आपने एम एस-सी करके रसायन विज्ञान मे कनाडा मे विशेपज्ञता प्राप्त की तथा देश के अनेक नामी ओद्योगिक सस्थानो मे अपनी सेवाएँ दी। आपके दो सुपुत्र व एक सुपुत्री हे। पुत्री श्रीमती अशु डाक्टर थी, जो विदेश मे अपने पति डाक्टर विदुर श्याम के साथ सेवाकार्य कर रही थी, किन्तु उस होनहार सुयोग्य पुत्री का आकस्मिक विछोह परिवार के साथ एक वज्रपात सी घटना हुई। आपने अपनी प्यारी विटिया श्रीमती डॉ अशु श्याम एव धर्मशीला धर्म पत्नी श्रीमती पुष्पादेवी की पुण्य स्मृति मे प्रकाशन मे आर्थिक सहयोग प्रदान किया हे। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती पुष्पादेवी भी वड़ी धार्मिक विचारो की उदार तथा सेवापरायण सन्नारी थी।

धन्यवाद।

मन्त्री–आत्म ज्ञानपीठ

भक्तामर स्तोत्र के मत्र, यन्त्र, विधि-विधान की रचना जिन आचार्यों ने की है, उनका लक्ष्य मूलत मनुष्य को जिन-भक्ति की ओर प्रेरित और उत्साहित करना ही रहा है। जिन-धर्म की प्रभावना उनका विशेष लक्ष्य रहा है और धर्म-प्रभावना की दृष्टि से वे उदारवादी बन गये है। इस दृष्टि से ही सकट-निवारण एव वाछित कार्य सिद्धि के लिए भक्तामर स्तोत्र की पूजाएँ, अखण्ड पाठ आदि किये जाते हैं। जैन आचार्यों की इस उदार और दूर दृष्टि ने जिन-धर्म की प्रभावना मे बड़ा योगदान दिया है, अन्य धर्मों के प्रभाव से उसकी रक्षा भी की है।

बहुत समय से लोगो की माग थी कि भक्तामर स्तोत्र का एक शुद्ध पाठ, अनुवाद, विवेचन तथा यत्र, मत्र युक्त ऐसा सस्करण प्रकाशित होना चाहिए जिससे पाठको के मन में जिन-भक्ति की आस्था बढ़े और पाठ करके सात्विक मनोकामना पूर्ति करने वाले मत्र आदि का ज्ञान भी हो सके। इसी प्रेरणा से श्री सुयश मुनि जी ने भक्तामर–महिमा का सयोजन किया है। इसमे मत्र, यत्र आदि के साथ ही प्रभावक कथाएँ भी सकलित की गई है। यद्यपि इन मत्र-यत्र, विधि-विधान, कथा आदि मे अनेक ऐसे प्रसग हैं, जहाँ पर स्थानकवासी परम्परा सहमत नही है, किन्तु वास्तविकता यह है कि इनकी रचना किसी स्थानकवासी आचार्य ने नही की है। प्राचीन आचार्यों ने जो सकलन व विधि-विधान किये है वे मत्रशास्त्र की दृष्टि से और अपनी विधि के अनुसार किये हैं। उन्हें मानने न मानने और करने न करने मे प्रत्येक व्यक्ति स्वतत्र है। फिर भी जो कुछ प्राचीन ग्रथो मे प्राप्त है, उसमे परिवर्तन करना तो हमारा अधिकार नहीं है, अपनी श्रद्धा विश्वास के अनुरूप जो व्यक्ति जैसा ठीक माने, करे। पर, अनाधिकार चेष्टा न करे। किसी पर कोई प्रतिबध नही, आक्षेप भी नही है। मत्र, यत्र एव कथा भाग के सकलन मे सपादक द्वय ने अपनी भाव-भाषा शैली की मुख्यता रखी है, अत इस सम्बन्ध मे अधिक भूमिका उन्ही की है। यदि कही कोई त्रुटि, परिवर्तन या शकास्पद लगे तो पाठक उनसे समाधान कर सकता है।

मुझे विश्वास है भक्तामर स्तोत्र के सर्वांग स्वरूप को समझने और उसे आत्मिक शक्ति जागृत करने की दृष्टि से पाठक गण हस की भाँति विवेक बुद्धिपूर्वक इसका अधिकाधिक लाभ उठायेगे।

परम श्रद्धेय पूज्य गुरुदेव भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज की हीरक जन्म जयन्ती के पावन प्रसग पर गुरुदेव के परमभक्त डॉ श्री मोजीराम जी जैन ने उदार अर्थ सहयोग प्रदान किया है, यह उनकी गुरुभक्ति, धर्म प्रेम और उदार साहित्यिक अनुराग की सुदर मिशाल है।

सपादक द्वय श्रीयुत श्रीचन्द जी सुराना एव डॉ आदित्य जी प्रचडिया भी साधुवाद के पात्र है।

—अमर मुनि

# सम्पादकीय

धर्म का हमारे जीवन मे बडा महत्त्व है। वह हमे जीवनीशक्ति प्रदान करता है। वह हमारी चेतना को सस्कारित करता है। यद्यपि वह हमें दिखाई नहीं देता किन्तु प्रतिक्षण हम उसका अनुभव कर सकते है। वह कही बाहर नही, हमारे ही भीतर है। लोक मे साधुओ की बडी महिमा है। वे सच्चे गुरु कहलाते है। कबीर ने तो गुरु को गोविन्द से भी बडा बताया है। गुरु को जहाज से उपमित किया जाता है। जहाज का सबसे बडा वैशिष्ट्य है उसकी तरण-तारणी शक्ति। जो जहाज स्वय तैर नही सकता वह स्वय तो डूबता ही है, साथ मे यात्रियो को भी ले डूबता है। जन साधु जहाज की नाई स्वय भी तरते है और दूसरो को भी तारने का सुयोग जुटाते है। आचार्य मानतुग सच्चे अर्थों मे ज्ञान, ध्यान और तपलीन साधुमणि थे। उनका जन-जन की श्रद्धा का केन्द्र, लोकाकाक्षाओ की पूर्ति के लिए विश्रुत, अनेक चमत्कारिक घटनाओ से सम्बद्ध स्तोत्र 'भक्तामर स्तोत्र' का उद्देश्य प्राणी को उन्मार्ग से हटाकर सन्मार्ग की ओर चलने की प्रेरणा प्रदान करना है।

'भक्तामर स्तोत्र' से जैन-जैनेतर सभी समाज भली-भाँति सुपरिचित है, यही इस स्तोत्र की लोकप्रियता का परिचायक है। इसमे भक्ति रस बडी गहनता से कूट-कूट कर भरा गया है लेकिन हम लोग अल्पज्ञ सस्कृत का अर्थ नही समझने के कारण उस अमिय रस का पान करने से वंचित रहकर स्तोत्र पाठ मात्र पढ़कर ही सतोष कर लेते है। ऐसी हालत मे मुँह से शब्द नि सृत होते रहते है लेकिन हमारा मन कहीं और ही भ्रमणशील रहता है। हमारा सारा पुरुषार्थ शब्दो को ढोने मे लगा रहता है और अर्थों से अनभिज्ञ। फलस्वरूप जितना हमको पुण्य-लाभ होना चाहिए, वह भी नही हो पाता। इसलिए हम अल्पज्ञो के मन को स्तोत्र के द्वारा भक्ति मे एकाग्र करने के लिए इस स्तोत्र का अर्थ-अभिप्राय, स्तोत्र परम्परा मे भक्तामर स्तोत्र का महत्त्व, स्तोत्र का आध्यात्मिक पक्ष का उद्घाटन-प्रकाशन, उसके मत्र-यत्र-तत्र का विवेचन, लोकविश्रुत कथामहिमा का सार-सक्षेपण आदि प्रस्तुत पुस्तक 'भक्तामर महिमा' के वर्ण्य विषय रहे हैं।

'भक्तामर महिमा' के प्रणयन मे पूज्य उपप्रवर्त्तक श्री अमर मुनि जी महाराज के सुशिष्य श्री सुयश मुनि जी का सयोजना-कौशल, दिशादर्शन उल्लेखनीय रहा है। हम इनके प्रति अपना नम्र आभार व्यक्त करते हैं। प्रस्तुत पुस्तक यदि जैन-जैनेतर, श्वेताम्बर-दिगम्बर ही क्या? सभी समुदाय के लिए उपादेय ठहरती है तो श्रम सार्थक रहेगा। शुभम् ॥

## अनुक्रम

## प्रथम अध्याय

# भक्तामर : स्वरूप-दर्शन

# जिन-भक्ति और स्तोत्र : भक्तामर

आज, जव हमारा ध्यान भारतीय सस्कृति की ओर जाता हे तो हमे गीरव का अनुभव होता है कि कोई समय था जव भारतीय सस्कृति का विश्वव्यापी साम्राज्य था और समस्त ससार इसकी मान्यताओ, सिद्धान्तो एव परम्पराओं का अनुकरण कर स्वय को गीरवशाली अनुभव करता था। आज स्थिति खेदजनक हे कि अपने ही धर्म के अनुयायी इसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते हे। इस प्रगतिशील वैज्ञानिक युग मे पूजा-पाठ, जप-तप आदि धार्मिक कर्मकाण्डो का अनुकरण करना अन्धविश्वास और पिछडेपन की निशानी माना जाने लगा है। भौतिक विज्ञान की उपलब्धियो से आकर्षित व्यक्तियो को गहराई से जानना चाहिए कि आधुनिक विज्ञान ने स्थूल जगत मे ही अपने अन्वेषण किए हैं। उनके यत्र एव उपकरण स्थूल वस्तुओं की गतिविधियो का ही पता चला सकते है। सूक्ष्म जगत् मे उनका प्रवेश नही है। सूक्ष्म जगत मे अनेक शक्तियो के भण्डार भरे पडे है। जिन ऋपि-मुनियो ने भारतीय सस्कृति की मान्यताओ, सिद्धान्तो, उपासनाओ, कर्मकाण्डो आदि पद्धतियो का निर्माण किया था वे निश्चित ही उच्चकोटि के वेज्ञानिक थे। उनकी ज्ञान की ज्योति मे स्पष्ट झलकता था कि स्थूल जगत की अपेक्षा सूक्ष्म जगत मे अधिक शक्ति सन्निहित होती है तथा उसका विकास कर मनुष्य प्रत्येक क्षेत्र मे चमत्कारी सफलता प्राप्त कर सकता है। धार्मिक साधनाएँ सूक्ष्म शक्तियो के विकास मे सहायक होती हैं। सूक्ष्म शक्ति को विकसित एव तेजपुज वनाने के लिए पूजा-पाठ, भक्ति-उपासना, जप-तप, ध्यान-योग आदि विधि-विधानो की व्यवस्था की गई है।

भक्त और भगवान के सम्वन्ध का नाम ही भक्ति हे। अपने आराध्य इष्टदेव के गुणो मे जो अनुराग होता हे, उसे ही भक्ति कहते हे। प्रशस्त, गुणानुराग ही भक्ति है। उसमें किसी भी प्रकार की अप्रशस्तता, स्वार्थ की गन्ध, फलाशा, छल आदि का समावेश नही होना चाहिए। भगवद्भक्ति मे लीन भक्त की जो विकार-मुक्ति एव आत्मोन्नयन होते हे वह भक्ति के तत्काल एव प्रत्यक्ष फल हं ओर उस काल मे उसमे कपायो की जो अत्यन्त मन्दता एव शुभरागरूप प्रवृत्ति रहती हे उससे उत्तम पुण्यवन्ध होता है, जो कालान्तर मे लौकिक अभ्युदय का ओर परम्परा से मोक्ष का हेतु वनता है। भक्ति में अद्भुत शक्ति है। उसकी महिमा अचिन्त्य एव अकथनीय हे किन्तु वह शक्ति सम्पूर्ण समर्पण एव स्वार्पण मे निहित हे। निष्कम्प, निष्काम ओर भावपूर्ण भक्ति ही कार्यकारी है। भक्ति, स्तुति, विनती,

प्रार्थना आदि के फल की कामना भक्ति मे नही होनी चाहिए। यदि कामना होती है तो वह सच्ची भक्ति नहीं, वह तो फिर सौदा हो गया।

भक्ति अनेक प्रकार से की जाती है। प्राथना, स्तुति, स्तवन, श्रद्धा, विनय, वन्दना, आदर, नमस्कार, आराधना, दर्शन, पूजन, मगल आदि भक्ति-प्रदर्शन के ही विविध रूप हैं। सेवा, ध्यान और सामायिक को भी इसी के समकक्ष माना गया है। भक्ति मे भक्त को अपना मन सब ओर से हटाकर अपने आराध्य मे केन्द्रित करना पडता है। अस्तु इस तरह की सभी क्रियाओ को भक्ति कहा जा सकता है। भक्ति वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा साधक अप्राप्त अथवा परम प्राप्तव्य को प्राप्त कर लेता है। आत्मा परमात्मा बन जाती है। भक्त भगवान बन जाता है।

भक्ति का मूल रूप स्तवन है। वह उसका आरम्भिक और शाश्वत रूप है। अपनी आरम्भिक अवस्था मे साधक जब शुभराग मे प्रवृत्त होता है तो परावलम्वी ध्यान के रूप मे वह अपने अनुकरणीय एव प्राप्य आदर्श इष्टदेव के गुणो मे अनुरक्त होकर उसका गुणगान करता है। इष्टदेव का यह भक्ति-प्रसूत प्रशस्त गुणगान ही भावभीने ललित स्तुति-स्तोत्रो का रूप ले लेता है। आराध्य मे जो गुण हैं और जो नहीं भी हैं, उनकी उद्‌भावना का नाम ही स्तुति है। भक्ति के आवेश मे भक्त बहुधा भगवान मे ऐसे गुणो का भी आरोप कर बैठता है जो उसमे नही है, जैसे–परम वीतराग अर्हंत देव मे कर्तृत्व का आरोप करना, उनके स्वभाव-विरुद्ध उन्हें सुख का कर्त्ता या दु ख का हर्त्ता कह देना, उन्हें सिद्धि या मोक्षदाता कह देना अथवा उनके साथ पिता-पुत्र, स्वामी-सेवक, प्रेमी, मधुर, सख्य आदि विविध भाव स्थापित करना। वस्तुत ऐसे औपचारिक उद्‌गार जब तक वे पथ से नही भटकाते और सीमित रहते हैं, निर्दोष ही होते है। भक्ति की विह्वलता मे ही उनका औचित्य सिद्ध है। इस प्रकार भक्त और भगवान के सम्मिलन का सेतु भक्त-हृदय से प्रस्फुटित भक्ति-प्रवण स्तोत्र होते हैं। मानव हृदय मे धर्म भाव का उदय जब से हुआ तब से भक्तो द्वारा भगवद्-भक्ति मे स्तोत्र रचे और गाये जाते रहे। भक्त जितना ही अधिक भक्ति रस मे सराबोर होगा, कषायो से रहित होगा, ज्ञानी एव प्रतिभा सम्पन्न होगा और उसका भगवान भी परमोत्कृष्ट लोकोत्तर अक्षय गुणो का पुज होगा उतना ही हियहारी, प्रभावपूर्ण चमत्कारी स्तोत्र होगा।

दो सहस्र वर्षों मे प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रश, तमिल, कन्नड, हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, सिन्धी, मराठी, उर्दू, अग्रेजी आदि विभिन्न भाषाओ मे जिन भक्तो ने असख्य स्तुति, स्तोत्र, स्तवन, विनती, पद आदि रचे हैं, उनमे सस्कृत भाषा मे प्रणीत जैन स्तोत्र भक्ति साहित्य मे भक्तामर का अपना विशिष्ट स्थान है।

'जिनसहस्रनाम', 'जिनचतुर्विंशतिकाएँ' के अतिरिक्त स्तोत्रकारो ने ऋषभनाथ, चन्द्रप्रभ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर के स्तोत्रो का प्रचुर प्रणयन

किया है। अजित-शाति स्तव भी रचे गए है। कल्याणक, समवशरण आदि विपयो को लेकर भी कतिपय स्तोत्रो की रचना हुई है। इन सव स्तोत्रो मे कहीं-कहीं दार्शनिकता, आध्यात्मिकता तथा हितोपदेशिता के भी अभिदर्शन होते हे, लेकिन अधिकाश स्तोत्र भक्तिपरक ही है। तीर्थंकरो के अतिरिक्त अन्य देवी-देवताओं में सरस्वती स्तोत्रो का प्रचलन चौथी-पॉचवी शती मे आरम्भ हुआ। दसवीं-ग्यारहवीं शती से चक्रेश्वरी, अम्विका, पद्मावती आदि विशिष्ट प्रभावशाली शासन देवियो के भी स्तोत्र रचे जाने लगे।

कई स्तोत्र मत्रपूत अथवा मात्रिक शक्ति से युक्त माने जाते रहे हे। अतएव उनके साथ सम्वद्ध चमत्कारो की आख्यायिकाएँ भी लोक मे ख्याति अर्जित कर चुकी है। ऐसे चमत्कारी स्तोत्रो मे आचार्य भद्रवाहु रचित 'उवसग्गहर स्तोत्र', समन्तभद्र रचित स्वयम्भूस्तोत्र, तिजयपहुत्त स्तोत्र, नमिऊण स्तोत्र, शान्तिस्तव, ऋषिमडल स्तोत्र, चिन्तामणि पार्श्वनाथ स्तोत्र, कल्याण मन्दिर स्तोत्र तथा भक्तामर स्तोत्र आदि जैन समाज मे अत्यन्त लोकप्रिय तथा भक्ति-प्रवण चमत्कारी स्तोत्र माने जाते है।

स्तोत्र साहित्य जैन भारती का महनीय अग है। विभिन्न भाषाओ एव विविध शैलियो मे रचित अनगिनत जैन स्तोत्रो मे मानतुग कृत 'भक्तामर स्तोत्र' का स्थान सर्वोपरि है, यह कहना अत्युक्ति न होगा। इसका व्यापक प्रसार तथा रचनाकर्मियो का अत्यन्त प्रियकर स्तोत्र होने से अनेक मनीषी रचनाकारो ने प्रचुर मात्रा मे सस्कृत भाषा मे टीकाएँ और लोकभाषा मे वालावबोधो का प्रणयन किया हे। हरिभद्रसूरि, गुणरत्नसूरि, कनककुशल, अमरप्रभ-सूरि, शान्तिसूरि, मेघविजयो-पाध्याय, रत्नचन्द्र, समयसुन्दरोपाध्याय, इन्द्ररत्नगणि, चन्द्रकीर्तिसूरि, हरितिलक गणि, क्षेमदेव की 'भक्तामर स्तोत्र टीका' तथा मेरुसुन्दरोपाध्याय, शुभवर्धनगणि, लक्ष्मीकीर्ति की 'भक्तामर स्तोत्र वालाववोध' रचनाएँ प्रसिद्ध है। इस स्तोत्र की चमत्कारिता के परिप्रेक्ष्य मे कथा, चरित्र, पूजा, माहात्म्य पर भी लेखको का ध्यान गया है। ब्रह्मरायमल्ल की 'भक्तामर स्तोत्र कथा', विश्वभूषण का 'भक्तामर स्तोत्र चरित्र', श्रीभूपण का 'भक्तामर स्तोत्र पूजा' शुभशील का 'भक्तामर स्तोत्र माहात्म्य', ज्ञानभूपण सुरेन्द्रकीर्ति और सोमसेन का 'भक्तामर स्तोत्र व्रतोद्यापन' एव 'भक्तामर स्तोत्र पचाग विधि' आदि कृतियाँ उपलव्ध हें। अनेक दिग्गज कवियो ने प्रचुर परिमाण मे 'पादपूर्ति स्तोत्र' तथा 'छाया स्तवन' भी रचे हे। जिनमे भावप्रभसूरि का 'नेमिभक्तामर स्तोत्र', समयसुन्दरोपाध्याय का 'ऋपभ भक्तामर स्तोत्र', लक्ष्मीविमल का 'शान्ति भक्तामर स्तोत्र', विनयलाभ का 'पार्श्व भक्तामर स्तोत्र', धर्मवर्धनोपाध्याय का 'वीर भक्तामर स्तोत्र', धर्मसिहसूरि का 'सरस्वती भक्तामर स्तोत्र', आचार्य श्री घासीलाल जी का 'वर्द्धमान भक्तामर' रत्नसिह का

'भक्तामर प्राणप्रिय काव्य' आदि रचनाऍं भक्तामर स्तोत्र के अनुकरण पर प्रणीत हैं। पडित हीरालाल, पडित गिरधर शर्मा प्रणीत 'भक्तामर पाद पूर्ति' तथा मल्लिषेण और रत्नमुनि रचित 'भक्तामर स्तोत्र छाया स्तवन', रचनाऍं भी प्राप्त है। बनारसीदास, हेमराज, आनदवर्धन के प्राचीन हिन्दी मे पद्यानुवाद भी उपलब्ध है। आज भी इसके हिन्दी, गुजराती, अग्रेजी आदि भाषाओं मे अनेक पद्य एव गद्य मय अनुवादात्मक रचनाएँ प्रकाश मे आ चुकी है। सुकवि सम्पादक एव पत्रकार श्रीचन्द सुराना द्वारा सम्पादित एक सचित्र, नयनाभिराम 'भक्तामर स्तोत्र' प्रकट हुआ है। इसके अतिरिक्त स्तोत्र की प्रसिद्धि इतनी रही है कि प्रमुख ज्ञान भण्डारो में कम से कम दस से लेकर पचास से भी अधिक हस्त प्रतियाँ उपलब्ध है। इस स्तोत्र की सचित्र प्रतियाँ काव्य-मत्र-यत्र गर्भित प्राप्त है।

इस प्रकार अपने भक्तिभाव प्रवणता एव रचना सौन्दर्य के कारण यह स्तोत्र लोक मे प्रियता प्राप्त किये हुए है। इस स्तोत्र को 'आदिनाथ स्तोत्र' भी कहा जाता है। 'वसन्ततिलका' जिसे 'मधुमाधवी' भी कहते हैं, नामक वार्णिक छन्द मे प्रणीत सस्कृत के अडतालीस पद्यो वाले इस मनहर स्तोत्ररत्न मे प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथ के गुणो का ज्ञान हुआ है। इस स्तोत्र की भाषा सहज-सुबोध है, साहित्यिक सुषमा और भक्तिरस की अविच्छिन्न धारा से अभिमडित है। वस्तुत यह स्तोत्र मान्त्रिक शक्ति से सम्पन्न है। इसके प्रत्येक पद्य के साथ एक-एक ऋद्धि-मत्र-यत्र एव माहात्म्य सूचक आख्यान सश्लिष्ट है। स्तोत्र की उत्पत्ति विषयक कथाऍं भी उसके चमत्कारित्व की द्योतक है। स्तोत्र का पाठ या आराधन कब और कैसे किया जाय, इसके नियम भी प्रचलित हो गए हैं। भक्तिकाव्य होने के अतिरिक्त भक्तामर स्तोत्र का स्वरूप विनती का है जिससे विभिन्न आपदाओं-विपदाओ, भयो एव परीक्षाओ से सत्रस्त भक्तो का भय निवारण होता है। धार्मिक भक्ति एव मान्त्रिक शक्ति दोनो ही दृष्टियो से 'भक्तामर स्तोत्र' का महत्व उल्लेखनीय है। एक सहस्र वर्षों मे 'भक्तामर स्तोत्र'को लेकर टीका, पद्यानुवाद, गद्यार्थ, वृत्ति, व्याख्या, पादपूर्तिकाव्य, अनुकरण पर रचे गए स्तोत्र, मत्र-यत्र, आख्यायिका कथादि प्रचुर मात्रा मे प्रणीत हुए है जिससे इस स्तोत्र का महत्व कालजयी हो जाता है।

● ●

# मानतुंगाचार्य का 'भक्तामर स्तोत्र' : विचार और विवेचना

भक्तिपूर्ण काव्य के स्रष्टा आचार्य मानतुग के विषय मे निर्णय लेना सहज नही है। अन्त साक्ष्य प्रमाणो के अभाव मे कविवर आचार्य मानतुग ओर उनकी यशस्वी रचना का काल निर्धारित करना प्राय सम्भव नही हे। श्रुतपरम्परा से कई विद्वान इनका समय मालवपति महाराज भोज का समय निश्चित करते हैं तो कई मनीपियो को महाकवि वाणभट्टकालीन महाराजा हर्पवर्धन का समय मान्य हे तथा कई विद्वान इनका समय विक्रम की छठी शताव्दी के आस-पास स्वीकारते ह। लोकश्रुत आधार पर यह महनीय प्रसग अवश्य अवन्तिका नगरी का हे। ग्यारहवीं सदी के उत्तरार्ध मे विदेशी आक्रमणो से हमारी अनेक कृतियॉ नष्टभ्रष्ट हो गई। अतएव आज आचार्य मानतुग के आधारभूत जीवन-वृत्त से हम अपरिचित है।

आचार्य मानतुग प्रणीत प्रसिद्ध स्तोत्र भक्तामर दिगम्वर और श्वोताम्वर दोनो सम्प्रदायो मे समानरूप से समादृत है। भक्तामर से अभिप्राय है—आत्मा-परमात्मा का सम्मिलन, उसका दर्शन और चिन्तन। इस स्तोत्र मे परमात्मा के अनुपम गुणो का और वीतरागभाव का अपूर्व वर्णन प्रस्तुत है। भक्त को अमर वनाने का अपार सामर्थ्य 'भक्तामरस्तोत्र' मे है। नमन और स्तवन अन्योन्याश्रित हैं। जहाँ नमन होता है वहाँ स्तवन अपने आप ही हो जाता है। नमन आत्मनिवेदनरूप भक्ति का एक प्रकार है। नमन द्वारा भक्त का परमात्मा से तादात्म्य होता है। जहाँ सीमा का विसर्जन होता है वहॉ असीम का दर्शन होता है। जहाँ-जहाँ जव भी ऐसा होगा वहॉ-वहॉ तव ही मानतुग जैसे आचार्य का आविर्भाव होगा और 'भक्तामर स्तोत्र' जेसी अमर रचना का प्रणयन होगा। लोहे की शृखलाएँ टूटेगी, भक्ति का अजस्र स्रोत प्रवहमान होगा।

भक्तामर की अर्थात्मा जेनदर्शन से अनुप्राणित है। इसलिए भारतीय वाड्मय मे उपलव्ध अन्य अनेक स्तोत्रो से विवेच्य स्तोत्र का स्थान सर्वथा भिन्न ओर अनन्य है।

जेनदर्शन मे जीव तत्त्व अथवा द्रव्य सर्वथा अविनाशी है और है चेतन्य से परिपूर्ण। शेप सभी द्रव्यो मे इस सव का अभाव है। जीव अथवा आत्मतत्त्व कर्म करने की शक्ति रखता हे। वह अपने कार्य का स्वय ही कर्त्ता होता है ओर अपने द्वारा किए कर्म के फल का स्वय ही भोक्ता भी हे।

भक्तामर का वाचक भक्त हे। उसकी भक्ति मे किसी परकीय शक्ति को नमन नहीं किया गया हे। वह स्वय प्रभु वनकर प्रभु की पूजा करता हे। प्रत्येक आत्मा मे

अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य (शक्ति)–अनन्त चतुष्टय विद्यमान हैं। स्तोत्र के वाचन-पवाचन मे, उनसे उत्पन्न नाद से अन्तरंग मे प्रच्छन्न इस अमोघ आत्म-शक्ति को जगाना होता है। उस स्वय की शक्ति से स्वय को अनभिज्ञ बनाए रखने का कारण क्या है? कारण है अहकार का उदय। मदनत्त भक्त का चित्त सर्वदा परकीय शक्ति की शरण को स्वीकारता है। मदा के अभाव मे शुद्ध भक्त अपनी आत्मा से साक्षात्कार करता है।

अहकार का पुरस्कर्त्ता है–मोह। मोह का परिणाम है–राग और द्वेष। राग और द्वेष को चिरजीवी करते है–लोभ, माया, मान और क्रोध। इनके प्रवेश से भक्त का अन्तरग जागतिक क्रिया-कलापो मे सक्रिय हो जाता है। उसका आध्यात्मिक रूप प्रच्छन्न हो जाता है। विनय के प्रयोग से अहकार का विसर्जन होता है। इस विनय का प्रयोक्ता होता है भक्त। विवेच्य स्तोत्र मे विनय का माहात्म्य उल्लेखनीय है। अपने को अपने मे ले जाने की विशिष्ट प्रक्रिया का मूलधार है विनय।

'भक्तामर स्तोत्र' मे भक्त परमेश्वर आदिनाथ के रूप का स्मरण करता है। उसका रूप प्रत्येक आत्मा का निष्कलुष स्वरूप ही है। प्रत्येक आत्मा का आत्मरूप जब अपने मे उजागर होने लगता है तब समभाव का उदय होता है। आचार्य मानतुग विवेच्य भक्तामर स्तोत्र के माध्यम से समभाव को जगाने का सफल समुद्योग करते है।

ममता की उपस्थिति मे जागतिक क्रियाकलाप व रागद्वेष उत्पन्न हो जाता है और तब सासारिक जीवनचक्र गतिमान होता है। कर्मकुल अच्छे अथवा बुरे सम्पन्न होते है। इसी कार्य से प्राणतत्त्व पर्याय धारण करता है। पर्याय धारण कर प्रत्येक प्राण तत्त्व प्राणी बन जाता है। अडतालीस तालो मे बनाया हुआ बदी पुरुष उससे मुक्त होने के लिए तत्कालीन राजा-रानी अथवा किसी अन्य व्यक्ति-शक्ति को भला-बुरा नहीं कहता और न ही वह उन्हें शापित करता है। वह तो अपने को बाहर से भीतर ले जाने का सम्यक् पुरुषार्थ करता है। आत्मोदय होने से सारे बन्ध स्वय निर्बन्ध हो जाते हैं। ममता के मिटने पर समता के प्रकट होने से स्व-पर का भेद समाप्त हो जाता है।

बध तो भेदभाव पर निर्भर करता है। भक्त इसी भेदभाव को भेदता है और अपने मे व्याप्त द्वैत को अद्वैत मे बदल देता है। यह बात मोटे तौर पर सुनने में लगती है कि जब समत्व जग जाएगा तब बधनमुक्त कैसे होना होगा? विचारणीय बात यह है कि बधन तो मोह-ममता की उपज है। जीवन से जब मोह-ममता का अन्त हो जाएगा तब बधन कैसे स्थिर रह सकता है? इसके लिए भक्त स्तोत्र का वाचन करता है।

शरीर मे आत्मतत्त्व प्रतिष्ठित है। ममत्व का ससार उसे अपनी प्रभावना से प्रच्छन्न किए है। राग द्वेष की अद्भुत चिपकन उस पर आवृत है। फलस्वरूप

उसका आकिचन्य स्वभाव तिरोहित हो गया है। भक्ति की प्रक्रिया मे विनय अथवा प्रणाम की मुद्रा से शरीर के उत्तमाग मुखर हो जाते है जिनके द्वार से ऊर्जा का उजागरण होता है ओर तव अहकार का पुज निस्तेज हो जाता है। स्तोत्रकार जव अपने मोहजन्य वधनो से मुक्त हो जाता है तो उसकी समत्व शक्ति से सारे वधन स्वय खुल जाते हैं।

'भक्तामर स्तोत्र' परमार्थ का समुच्चय हे। परमार्थ मिलने पर भक्त को यह स्तोत्र ऋद्धि, निधि, सिद्धि और आत्मिक सुख को सुलभ कराता हे। इसका प्रत्यक चरण, पद और अक्षर चमत्कारी है। इस स्तोत्र की यह विशेपता है कि इसे किसी भी तीर्थंकर पर घटित किया जा सकता हे। प्रत्येक पद्य मे उपमा, उत्प्रेक्षा ओर रूपक अलकार का समावेश है। इसका भापा सौष्ठव ओर भावगाम्भीर्य आकर्पक हे। कवि अपनी नम्रता प्रकट करता हुआ कहता हे कि 'हे प्रभु' मे अल्पज्ञ हूँ। वहुश्रुतज्ञ विद्वानो द्वारा हॅसी का पात्र होने पर भी आपकी भक्ति ही मुझे मुखर वनाती है। वसन्त मे कोकिल स्वय नहीं वोलना चाहती, प्रत्युत आम्र मजरी ही उसे वलात् कूजने का निमत्रण देती हे। स्तोत्र का छद छह इस दृष्टि से देखिए। अतिशयोक्ति अलकार के उदाहरण इस स्तोत्र मे कई आए हे। पर सत्रहवे छद का अतिशयोक्ति अलकार वहुत ही सुन्दर है। आचार्य मानतुग कहते है कि हे भगवन्! आपकी महिमा सूर्य मे भी वढ़कर हे, क्योकि आप कभी भी अस्त नही होते। न राहुगम्य हैं। न आपका महान प्रभाव मेघो से अवरुद्ध होता हे। आप समस्त लोको को एक साथ अनायास स्पष्ट रूप से प्रकाशित करते हे, जवकि सूर्य राहु से ग्रस्त या मेघो से आच्छन्न हो जाने पर अकेले मध्यलोक को भी प्रकाशित करने मे अक्षम रहता है। इस सत्रहवे छद मे भगवान को अद्‌भुत सूर्य के रूप मे वर्णित कर अतिशयोक्ति का चमत्कार दिखलाया गया है। आचार्य मानतुग छद पच्चीस मे आदि जिन को वुद्ध, शकर, धाता ओर पुरुपोत्तम सिद्ध करते हैं।

भक्तामर स्तोत्र मे कल्पना की स्वच्छता 'कल्याण मदिर स्तोत्र' के सदृश हे। भक्तामर स्तोत्र की कल्पनाओं का पल्लवन एव कुछ नवीनताओ का समावेश चमत्कारपूर्ण शेली मे हुआ हे। भक्तामर मे कहा हे कि सूर्य की वात ही क्या, उसकी प्रभा ही तालावो मे कमलो को विकसित कर देती है, उसी प्रकार हे प्रभो! आपका स्तोत्र तो दूर ही रहे, आपके नाम की कथा ही समस्त पापो को दूर कर देती है। यह नाम-माहात्म्य श्रीमद्‌भागवत के समान भक्ति-स्तोत्र साहित्य मे स्थानान्तरित हुआ ह। भक्तामर स्तोत्र मे नाम का महत्व दृष्टिगत हे। आचार्य मानतुग कहते हैं कि 'हे प्रभो! सग्राम मे आपके नाम का स्मरण करने से वलवान राजाओं के युद्ध करते हुए घोडो, हाथियो की भयानक गर्जना से युक्त सेन्यदल उसी प्रकार नष्टभ्रष्ट हो जाता हे जिस प्रकार सूर्य के उदय होने से अन्धकार नष्ट हो जाता है।' 'भक्तमर स्तोत्र' तथ्य विश्लेपण की दृष्टि से श्रीमद्‌भागवत ओर शेली की दृष्टि से पुष्पदत के 'शिवमहिम्नस्तोत्र' के समकक्ष हे। इस प्रकार 'भक्तामर स्तोत्र' में भक्ति, दर्शन ओर काव्य की त्रिवेणी एक साथ प्रवाहित हुई है।

## द्वितीय अध्याय

# भक्तामर : मूलपाठ, अन्वयार्थ, पद्यानुवाद एवं अर्थ-अभिप्राय

# भक्तामर स्तोत्र : मूलपाठ, अन्वयार्थ, पद्यानुवाद और अर्थ-अभिप्राय

## मूलपाठ

(वसन्ततिलकावृत्तम्)

भक्तामर-प्रणत-मौलिमणि-प्रभाणा-
मुद्‌द्योतकं दलित-पाप-तमोवितानम् ।
सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादा-
वालम्वनं भवजले पततां जनानाम् ॥१॥

यः संस्तुतः सकल-वाङ्मयतत्त्वबोधा-
दुद्‌भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोक-नाथैः ।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितय-चित्तहरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् ॥२॥
(युग्मम्)

अन्वयार्थ–(भक्तामर-प्रणत-मोलि-मणिप्रभाणाम्) भक्त देवो के झुके हुए मुकुट-सम्बन्धी रत्नो की क्रान्ति के (उद्‌घोतकम्) प्रकाशक (दलित-पाप-तमोवितानम्) पापरूपी अधकार समूह को नष्ट करनेवाले ओर (युगादौ) युग के प्रारम्भ मे (भवजले) ससाररूपी जल मे (पतताम्) गिरते हुए (जनानाम्) प्राणियो के (आलम्वनम्) आलम्वन–सहारे (जिनपादयुग) जिनेन्द्र भगवान् के दोनो चरणो को (सम्यक्) अच्छी तरह से (प्रणम्य) प्रणाम करके।

(य) जो (सकल-वाङ्मय- तत्त्वबोधात्) समस्त द्वादशाग (शास्त्र) के ज्ञान से (उद्‌भूत-बुद्धि-पटुभि) उत्पन्न हुई बुद्धि के द्वारा चतुर (सुरलोक-नाथै) इन्द्रो के द्वारा (जगत्त्रितयचित्तहरे) तीनो लोको के प्राणियो के चित्त को हरने वाले और (उदारे) उत्कृष्ट (स्तोत्रै) स्तोत्रो से (सस्तुत) जिनकी स्तुति की गई थी (तम्) उन (प्रथमन्) पहले (जिनेन्द्रम्) जिनेन्द्र ऋषभदेव की (अहम् अपि) मै भी (किल) निश्चय से (स्तोष्ये) स्तुति करूँगा। ॥१-२॥

## पद्यानुवाद

(श्री पडित हेमराज कृत)

*आदि पुरुष आदीश जिन, आदि सुविधि करतार।*
*धरम धुरन्धर परमगुरु, नमो आदि अवतार॥*
*सुरनत-मुकुट रतन छवि करे, अन्तर पाप तिमिर सव हरे।*
*जिन पद वन्दो मन वच काय, भवजल पतित-उधरन सहाय॥*
*श्रुत-पारग इन्द्रादिक देव, जाकी थुति कीनी कर सेव।*
*शव्द मनोहर अरथ विशाल, तिस प्रभु की वरनो गुनमाल॥*

## अर्थ-अभिप्राय

कर्मभूमि के प्रारम्भ मे, भूख प्यास से पीड़ित प्रजा को, जिन्होने उसके निवारण का मार्ग दिखाया और धर्म का उपदेश देकर पाप के प्रसार को रोका, भक्तियुक्त देवो ने आकर चरण-कमलो को नमस्कार किया। उनके चरणो के नखो की कान्ति से देवो के मस्तको के मुकुटो मे लगी हुई मणियाँ और भी अधिक चमकने लगती थी। ऐसे प्रथम जिनेन्द्र ऋषभदेव के चरणो मे प्रणाम करके मै उनकी स्तुति करूँगा।

समस्त शास्त्रो के तत्त्वज्ञान से उत्पन्न होने वाली निपुण बुद्धि द्वारा अतीव चतुर वने हुए देवेन्द्रो ने तीन लोक के चित्त को हरण करने वाले, अनेक प्रकार के गम्भीर एव विशाल स्तोत्रो से जिनकी स्तुति की है, आश्चर्य है, उन प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव प्रभु की मै स्तुति करना आरम्भ करता हूँ।

## मूलपाठ

**बुद्ध्या विनाऽपि विवुधार्चितपादपीठ !**
**स्तोतुं समुद्यत-मतिर् विगत-त्रपोऽहम् ।**
**वालं विहाय जलसंस्थितमिन्दुविम्व-**
**मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम् ॥३॥**

अन्वयार्थ–(विवुधार्चित-पादपीठ) देवो के द्वारा जिनके चरण रखने की चौकी पूजित है, ऐसे हे जिनेन्द्र! (विगत-त्रप ) लज्जा-रहित (अहम्) मे (वुद्ध्या विना अपि) वुद्धि के विना भी (स्तोतुम्) स्तुति करने के लिए, (समुद्यतमति·) तत्पर हो रहा हूँ। (वालम्) वालक–अज्ञानी को (विहाय) छोडकर (अन्य ) दूसरा (क जन ) कौन मनुष्य (जल-सस्थितम्) जल मे स्थित–रहे हुए (इन्दुविम्वम्) चन्द्रमा के प्रतिविम्व को (सहसा) विना विचारे (ग्रहीतुम्) पकडने की (इच्छति) इच्छा करता है? अर्थात् कोई भी नही करता ॥३॥

## पद्यानुवाद

*विबुध-वद्यपद! मैं मति हीन, हो निलज्ज थुति मनसा कीन।*

*जल-प्रतिबिम्ब बुद्ध का गहै, शशिमण्डल बालक ही चहै॥*

## अर्थ–अभिप्राय

मै (मानतुग आचार्य) बुद्धिविहीन (अल्पबुद्धि), देवो मे अर्चित है चरण कमल जिनके, ऐसे हे जिनेन्द्र देव! आपकी स्तुति करने के लिए उद्यत हुआ हूँ। यह मेरी बाल चेष्टा है क्योकि जल मे पडे हुए चन्द्रमा के प्रतिविम्ब को बालक के सिवाय पकडने की अन्य कौन चेष्टा कर सकता है? अर्थात् कोई भी नही। उसी प्रकार आपके अगम्य गुणो का वर्णन करने का प्रयास बाललीला के समान ही है।

## मूलपाठ

**वक्तुं गुणान् गुणसमुद्र ! शशाङ्ककान्तान्,**
**कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या ।**
**कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्रचक्रं,**
**को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम् ॥४॥**

अन्वयार्थ–(गुणसमुद्र ! ) हे गुणो के सागर ! (बुद्धया) बुद्धि से (सुरगुरु-प्रतिम अपि) वृहस्पति के समान भी (क ) कौन पुरुष (ते) आपके (शशाककान्तान्) चन्द्रमा के समान सुन्दर (गुणान्) गुणो को (वक्तु) कहने मे (क्षम ) समर्थ हे? अर्थात् कोई नही। (वा) अथवा (कल्पान्तकाल-पवनोद्धत-नक्रचक्रम्) प्रलय-काल के अधड से विक्षुब्ध मगरमच्छो का समूह जिसमे उछल रहा हो, ऐसे (अम्बुनिधिम्) समुद्र को (भुजाभ्याम्) भुजाओ से (तरीतुम्) तैर कर पार करने मे (क अलम्) कौन समर्थ है?अर्थात् कोई नही ॥४॥

## पद्यानुवाद

*गुन समुद्र तुम गुन अविकार, कहत न सुरगुरु पावै पार।*

*प्रलय पवन उद्धत जलजन्तु, जलधि तिरै को भुज बलवन्तु॥*

## अर्थ-अभिप्राय

हे गुण सिन्धु! देवो के गुरु बृहस्पति के समान बुद्धि वाले भी आपके चन्द्रमा के सदृश कांति वाले उज्ज्वल गुणो को कहने मे समर्थ नही है, तो अन्य कौन समर्थ है? जैसे प्रलयकाल के प्रचण्ड पवन से उछलते हुए मगर मच्छो से युक्त समुद्र को दो भुजाओ से तैरने के लिए कौन पुरुष समर्थ हो सकता है? अर्थात् कोई भी नहीं।

### मूलपाठ

**सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश !**
**कर्तुं स्तवं विगतशक्तिरपि प्रवृत्तः।**
**प्रीत्याऽऽत्मवीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं,**
**नाभ्येति किं निजशिशोः परिपालनार्थम् ॥५॥**

अन्वयार्थ–(मुनीश) हे मुनियो के स्वामी ! (तथापि) तो भी (स अहम्) वह अल्पज्ञ मै, (विगतशक्ति अपि) शक्ति रहित होते हुए भी (भक्तिवशात्) भक्ति के वश (तव) आपकी (स्तवम्) स्तुति (कर्तुम्) करने के लिए (प्रवृत्त ) तैयार हुआ हूँ। (मृगी) वेचारी हिरनी (आत्मवीर्य अविचार्य) अपनी शक्ति का विचार किये विना केवल (प्रीत्या) वात्सल्य प्रीति के वश (निजशिशो ) अपने बच्चे की (परिपालनार्थम्) रक्षा के लिए (किम्) क्या (मृगेन्द्र न अभ्येति) सिह के सामने नहीं अड जाती है? अर्थात् अड ही जाती है॥४॥

### पद्यानुवाद

*सो मैं शक्तिहीन थुति करूँ, भक्ति भाववश कछु नहि डरूँ।*
*ज्यो मृगि निज सुत पालन हेत, मृगपति सन्मुख जाय अचेत॥*

### अर्थ-अभिप्राय

ऐसा होते हुए भी (तो भी) हे मुनीश! वही मै, शक्ति नहीं होने पर भी भक्ति के वश से आपकी स्तुति करने के लिए उद्यत हुआ हूँ, जेसे हिरणी समर्थ नही होने पर भी वात्सल्यवश अपने वच्चे को वचाने के लिए वह सिह का सामना करती है।

### मूलपाठ

**अल्पश्रुतं श्रुतवतां परिहासधाम,**
**त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते वलान्माम् ।**
**यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,**
**तच्चाम्र-चारु-कलिकानिकरैकहेतु ॥६॥**

अन्वयार्थ–(अल्पश्रुतम्) मे अल्पज्ञ हूँ, अतएव (श्रुतवताम्) विद्वानो की, (परिहासधाम) हमी के स्थान-पात्र (माम्) मुझे (त्वद्भक्ति एव) आपकी भक्ति ही (वलात्) जवर्दस्ती (मुखरीकुर्न्ते) वाचाल कर रही हे (किल) निश्चय से (मधौ) वसन्त-ऋतु मे (कोकिल ) कोयल (यत्) जो (मधुरम् विरौति) मीठे शव्द करती हे

(तत् च) और वह (आम्रचारुकलिकानिकरैकहेतु ) आम की मुन्दर मजरी के समूह के कारण ही करती है ॥६॥

## पद्यानुवाद

*मैं शठ सुधी-हँसन को धाम, मुझ तुव भक्ति बुलावै राम।*
*ज्यो पिक अम्ब-कली परभाव, मधु ऋतु मधुर करै आराव॥*

## अर्थ-अभिप्राय

हे भगवन् ! जेसे वसन्त ऋतु मे आम की मजरी का निमित्त पाकर कोयल मधुर वचन बोलती है, वैसे ही मैं भी आपकी भक्ति के निमित्त को पाकर आपकी स्तुति करने हेतु वाचाल हो रहा हूँ। अन्यथा मे तो अल्पज्ञानी हूँ ओर ज्ञानियो के सामने उपहास का पात्र हूँ।

वसत ऋतु मे कोयल मधुर स्वर मे कुहुकती है क्योकि उसके सामने आम्रवृक्षो के रसदार मजरियो के गुच्छे होते हैं। स्वाभाविक है कि जव अपने सामने कोई अत्यन्त प्रिय वस्तु (जेसे कि रसदार आमो का वौर) हो तो स्वर मे अपने आप मधुरता आ जाती है। ठीक उसी प्रकार आपकी भक्ति के विचार मात्र से ही मेरी वाणी मे इतनी मधुरता आ रही है।

## मूलपाठ

**त्वत्संस्तवेन भवसन्तति-सन्निवद्धं**
**पापं क्षणात्क्षयमुपैति शरीरभाजाम् ।**
**आक्रान्त-लोकमलिनीलमशेषमाशु**
**सूर्यांशुभिन्नमिव शार्वरमन्धकारम् ॥७॥**

अन्वयार्थ-(त्वत्सस्तवेन) आपकी स्तुति से (शरीर-भाजाम्) प्राणियो के (भवसन्तति-सन्निवद्धम्) अनेक जन्म-परपरा से वधे हुए (पापम्) पाप-कर्म (आक्रान्त-लोकम्) सम्पूर्ण लोक मे फैले हुए (अलिनीलम्) भौरो के समान काला (शार्वरम्) रात्रि का (अशेपम् अधकारम्) सपूर्ण अधकार (सूर्यांशुभिन्नम् इव) जैसे सूर्य की किरणो से छिन्न-भिन्न हो जाता है, उसी तरह पूर्ववद्ध कर्म (क्षणात्) क्षणभर मे (आशु) शीघ्र ही (क्षयम् उपैति) नष्ट हो जाते हैं ॥७॥

## पद्यानुवाद

*तुम जस जपत जन छिनमाहि, जनम जनम के पाप नशाहि।*
*ज्यो रवि उगै फटै तत्काल, अलिवत् नील निशा-तम-जाल॥*

## अर्थ-अभिप्राय

जैसे रात्रि का समस्त लोक मे फैले हुए भ्रमर के समान काले रग वाला घोर अधकार सूर्य की किरणो से शीघ्र समूल नष्ट हो जाता है, वैसे ही हे प्रभु! आपकी स्तुति करने से देह-धारियो के अनेक भवो के सचित अर्थात् वँधे हुए पाप क्षण भर मे नष्ट हो जाते हैं।

जिस प्रकार सूर्य की किरण से रात्रि का सघन काला अन्धकार पी फटते ही विलीन हो जाता है, उसी प्रकार आपके दर्शन-स्मरणरूपी सम्यक्त्व की किरण से मिथ्यात्वरूपी अन्धकार क्षणभर मे नष्ट हो जाता है। मिथ्यात्व तो तभी तक था जब तक कि हृदय मे जिनेन्द्र भक्ति का प्रखर प्रकाश नही था। मानव हृदय मे श्री जिनेन्द्रदेव के गुणो का प्रकाश होते ही उसमे प्रच्छन्न समस्त सासारिक पाप कर्म तुरन्त ही समाप्त हो जाते हैं। वस्तुत. मानव हृदय मे जव अपने आदर्श के गुणो का आलोक भर जाता है तो फिर कल्मषरूपी अधकार वहाँ कैसे ठहर सकता है? भला कही एक म्यान मे दो तलवारे रह सकती हैं-अर्थात् कभी नहीं।

## मूलपाठ

**मत्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद-**
**मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात् ।**
**चेतो हरिष्यति सतां नलिनीदलेषु**
**मुक्ताफल-द्युतिमुपैति ननूदबिन्दुः ॥८॥**

अन्वयार्थ-(नाथ !) हे स्वामिन् ! (इति मत्वा) ऐसा मानकर ही (मया तनुधिया अपि) मुझ मन्द-बुद्धि के द्वारा भी (तव) आपका (इदम्) यह (सस्तवनम्) स्तवन (आरभ्यते) प्रारम्भ किया जाता है कि (तव प्रभावात्) आपके प्रभाव से वह (सताम्) सज्जनो के (चेत ) चित्त को उसी तरह (हरिष्यति) हरण करेगा (ननु) निश्चय ही जैसे (उद-विन्दु ) जल-विन्दु (नलिनीदलेषु) कमलिनी के पत्तो पर (मुक्ताफल-द्युतिम्) मोती के समान कान्ति को (उपैति) प्राप्त होता है ॥८॥

## पद्यानुवाद

*तुव प्रभाव तैं कहूँ विचार, होसी यह थुति जन-मनहार।*
*ज्यों जल कमल पत्र पै परै, मुक्ताफल की द्युति विस्तरै॥*

## अर्थ-अभिप्राय

मुझ अल्पज्ञ द्वारा रचित यह साधारण स्तोत्र भी आपके प्रभाव से सज्जन पुरुषो के मन को अवश्य ही हरण करेगा, जेसे कमलिनी के पत्तो पर पडी हुई जल की वूँद भी उन पत्तो के प्रभाव से मोती के समान शोभा पाती है।

हे प्रभो! जिस पकार कमलिनी के पत्ते पर पडा हुआ ओस-बिन्दु उस पत्ते के स्वभाव एव प्रभाव से मोती के समान आभा बिखेर कर दर्शकों के चित्त को आल्हादित करता है, उसी प्रकार मुझ मदबुद्धि के द्वारा किया हुआ यह स्तवन भी आपके प्रताप, प्रभाव एव प्रसाद से सज्जन पुरुषों के चित्त को प्रफुल्लित करेगा।

गुणगायन भले ही मदबुद्धि के द्वारा किया जा रहा है परन्तु उसमे आपके गुणो का ही पुट आद्यन्त विधमान है तो आश्चर्य नही कि मेरा यह लघु स्तोत्र भी महान चमत्कारी बनकर सत्पुरुषो के हृदय को प्रफुल्लित करने मे समर्थ होगा। ओस की वूद का भी कोई महत्व होता है? परन्तु वही बूँद जब कमलिनी के पत्र पर पड जाती है तब स्वभावत ही वह मोती का रूप धारण करके दर्शकों के मन को मोहित करती है। आखिर उस पानी की बूँद को मोती की आभा देने मे किसका हाथ है? कमलिनी के पत्ते का ही क्या यह स्वाभाविक प्रभाव नहीं है? अर्थात् अवश्य है। उसी तरह स्तुति मे निहित सारा चमत्कार जिनवर के परम प्रसाद का परिणाम है। इसमे मेरा कुछ भी नही है।

भव्य जीवो के वचन रूपी जल-कण मिथ्यात्व-मल मेल के हटते ही गुणानुवाद रूपी पत्ते भी उस पानी पर फैले हुए है। हे भगवान्! मेरी आत्मा पर कर्मों के आवरण हैं। उसमे यथार्थ स्वरूप होना असम्भव है, तब भी पौद्गलिक शब्दो से मेरे द्वारा जो स्तवन हो रहा है, वह सतो-सज्जनो को सतुष्ट करेगा।

## मूलपाठ

**आस्तां तव स्तवनमस्तसमस्त-दोषं**
**त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हन्ति।**
**दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव**
**पद्माकरेषु जलजानि विकाशभाञ्जि ॥९॥**

अन्वयार्थ-(अस्तसमस्तदोषम्) सम्पूर्ण दोषो से रहित (तव स्तवनम् आस्ताम्) आपका स्तवन तो दूर रहा, किन्तु (त्वत् सकथा अपि) आपकी पवित्र कथा भी (जगताम्) जगत् के जीवों के (दुरितानि) पापो को (हन्ति) नष्ट कर देती है। (सहस्रकिरण:) सूर्य (दूरे) दूर रहता है, पर उसकी (प्रभा एव) प्रभा ही (पद्माकरेषु) सरोवरो मे (जलजानि) कमलो को (विकाश-भाञ्जि) विकसित (कुरुते) कर देती है ॥९॥

## पद्यानुवाद

*तुम गुन महिमा हत दुख-दोष, सो तो दूर रहो सुख पोष।*
*पाप विनाशक है तुम नाम, कमल विकासी ज्यों रविधाम॥*

## अर्थ–अभिप्राय

सूर्योदय होना तो दूर रहे, परन्तु उसकी अरुण-प्रभा ही सरोवरो के कमलो को खिला देती हे। उसी प्रकार हे भगवन! आपके निर्दोप स्तवन करने का क्या महत्व वताऊँ? आपके नाम का केवल उच्चारण ही ससारी जीवो के समस्त पापो का विनाश कर देता हे। अर्थात् सम्पूर्ण दोपो से रहित आपका पवित्र कीर्तन तो वहुत दूर की वात हे, मात्र आपकी चरित्र-चर्चा ही जव प्राणियो के पापो को समूल नष्ट कर देती है तव स्तवन की अचिन्त्य शक्ति का तो कहना ही क्या?

सूर्य पृथ्वी के धरातल से कोसो दूर अपने स्थान पर अवस्थित हे तो भी अपनी प्रभा से सरोवरो के कमलो को खिला देता हे अर्थात् आपकी चर्चा तो सूर्य की प्रभा के सदृश है और आपका स्तवन प्रत्यक्ष रविमडल ही हे।

## मूलपाठ

**नात्यद्भुतं भुवनभूषण ! भूतनाथ !**
**भूतैर् गुणैर् भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः ।**
**तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा**
**भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥१०॥**

अन्वयार्थ–(भुवनभूपण !) हे ससार के भूषण ! (भूतनाथ !) हे प्राणियो के स्वामी ! (भूतै गुणै ) सच्चे गुणो के द्वारा (भवन्तम् अभिष्टुवन्त ) आपकी स्तुति करने वाले पुरुप (भुवि) पृथ्वी पर (भवन्त ) आपके (तुल्या ) समान (भवन्ति) हो जाते हैं (इदम् अत्यद्भुत न) यह वड़े आश्चर्य की वात नही है। (वा) अथवा (तेन) उस स्वामी से (किम्) क्या प्रयोजन हे? (य ) जो (इह) इस लोक मे (आश्रितम्) अपने आश्रित जन को (भूत्या) सम्पत्ति–ऐश्वर्य से (आत्मसमम्) अपने वरावर (न करोति) नही कर देता ! ॥१०॥

## पद्यानुवाद

*नहि अचभ जो होहि तुरत, तुमसे, तुम गुण वरणत सन्त।*
*जो अधीन को आप समान, करे न सो निन्दित धनवान॥*

## अर्थ–अभिप्राय

ससार मे जो स्वामी अपने आश्रित सेवक को वेभव देकर अपने जेसा समृद्ध नही वनाता, उस स्वामी की सेवा से सेवक को क्या लाभ हे? कुछ भी नही, किन्तु हे भुवनभूपण! हे जगन्नाथ! जो भव्य पुरुप आपकी स्तुति करते हे वे आपके ही सदृश हो जाते हे, इसमे कुछ भी आश्चर्य नही हे।

हे भुवन भूषण भूतनाथ! आप मे विद्यमान वास्तविक विपुल गुणा का कीर्तन करने वाले भव्य भक्त यदि आप जेसे ही प्रभु बन जाते हे तो इसमे आश्चर्य करने की कोई बात नही। क्योकि इस लोक मे जो धनी-मानी श्रीमन्त हं वे भी अपने आश्रित सेवको को विपुल आर्थिक सहायता देकर अपने ही समान समृद्धिशाली बना लेते हैं। तात्पर्य यह है कि जो भक्त जिनेन्द्र प्रभु का गायन करता हे वह कभी अनाथ बनकर ससार-सागर मे गोते नही खाता अपितु अपने प्रभु के समान ही अक्षय पद को प्राप्त कर लेता हे। भक्त कहता हे कि मे आपका प्रशस्त कीर्तन कर रहा हूँ वह नियम से कालान्तर मे सिद्ध पद को प्राप्त करायेगा।

इस काव्यछद मे साम्यवाद ओर समाजवाद के प्रतिष्ठापन की झलक मिलती है।

## मूलपाठ

**दृष्ट्वा भवन्तमनिमेषविलोकनीयं,**
**नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः ।**
**पीत्वा पयः शशिकरद्युति-दुग्धसिन्धोः,**
**क्षारं जलं जलनिधेरसितुं क इच्छेत् ॥११॥**

अन्वयार्थ–(अनिमेषविलोकनीयम्) विना पलक झपकाये–एकटक देखने के योग्य, (भवन्तम्) आपको (दृष्ट्वा) देखकर (जनस्य) मनुष्य के (चक्षु ) नेत्र (अन्यत्र) दूसरी जगह (तोषम्) सन्तोष (न उपयाति) नही पाते। (दुग्धसिन्धो ) क्षीर-सागर के (शशिकरद्युति) चन्द्रमा के समान कान्ति वाले (पय ) पानी को (पीत्वा) पीकर (क ) कौन पुरुष (जलनिधे ) समुद्र के (क्षारं जलम्) खारे पानी को (रसितुम् इच्छेत्) पीना चाहेगा? अर्थात् कोई नही ॥११॥

## पद्यानुवाद

*इकटक जन तुमको अविलोय, अवर विषै रति करै न सोय।*
*को करि क्षीर जलधि जल पान, क्षार नीर पीवै मतिमान॥*

## अर्थ–अभिप्राय

चन्द्र-किरणो के समान काति वाले क्षीर सागर का दुग्ध के समान मधुर जल का पान करके कौन पुरुष लवण समुद्र के खारे जल को पीने के लिए इच्छा करेगा? कोई भी पीना नही चाहेगा। वेसे ही हे भगवन्! जो पुरुष अपलक दृष्टि से दर्शनीय आपको एक वार अच्छी तरह से देख लेते हैं, उनकी दृष्टि फिर अन्य देवो मे सतोष नही प्राप्त करती है।

हे देवाधिदेव ! आप इतने अधिक स्वरूपवान है कि जिसकी ऑखो मे आप एक वार भी समा जाते है वह निरन्तर ही आप को टकटकी लगाकर देखता ही रह जाता है–उसके पलक तक भी नही झपकते, फिर अन्य देवी-देवताओ की ओर देखने का तो कोई प्रश्न ही नही उठता। अर्थात् जो एक वार भी आपके दर्शन कर लेता है उसके चक्षुओ को जगत के अन्य पदार्थों को देखने से सतोप प्राप्त नहीं होता। क्षीरसागर के सुस्वादु मधुर निर्मल शीतल दुग्धोपम जल को पी चुकने के बाद ऐसा कौन पुरुप होगा जो लवण समुद्र के खारे पानी को पीने की इच्छा करेगा? अर्थात् कोई नही। इसी प्रकार ऐसी प्रशान्त भव्य वीतराग मुद्रा का अवलोकन करने के बाद विलासी विकृत मुद्रा को देखकर कौन भला मानुष प्रसन्न होगा? तीनो लोको मे सर्वोत्कृष्ट दर्शनीय तत्त्व यदि कोई है तो एक मात्र वीतराम परमात्मा ही है।

## मूलपाठ

**यैः शान्तरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,**
**निर्मापितस्त्रिभुवनैक-ललामभूत !**
**तावन्त एव खलु तेप्यणवः पृथिव्यां,**
**यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥१२॥**

अन्वयार्थ–(त्रिभुवनैकललामभूत !) हे त्रिभुवन के एकमात्र आभूषण (त्वम्) आप (यै ) जिन (शान्तराग-रुचिभि ) शान्तरस से उज्ज्वल (परमाणुभि ) परमाणुओ से (निर्मापित ) रचे गए हे (खलु) निश्चय ही (पृथिव्याम्) पृथ्वी पर (ते अणव अपि) वे अणु भी (तावन्त एव) उतने ही थे (यत्) क्योकि (ते समानम्) आपके समान (अपरं रूपम्) दूसरा रूप (न हि अस्ति) नही हे ॥१२॥

## पद्यानुवाद

*प्रभु तुम वीतराग गुणलीन, जिन परमाणु देह तुम कीन।*
*ह तितने ही ते परमाणु, याते तुम सम रूप न आनु॥*

## अर्थ–अभिप्राय

तीनो लोको मे अद्वितीय सुन्दर रूप के धारक भगवन् ! शान्त-रस की कान्ति वाले जिन मनोहर परमाणुओ से आपके शरीर का निर्माण हुआ हे, वे परमाणु इस लोक मे वस उतने ही थे। क्योकि अधिक होते तो आप जेसा रूप ओरो का भी दिखाई देता, यही कारण ह कि ससार मे आपके समान अन्य कोई सुन्दर रूप वाला व्यक्ति दिखाई नहीं देता ह।

हे जगत भूषण । जिन पुद्गल परमाणुओं से आपका शरीर विनिर्मित है वे रागद्वेष रहित वीतराग गुण वाले थे और ससार में वैसे पुद्गल परमाणु उतने ही थे जिनसे आपके शरीर की रचना हुई है। यही कारण है कि आपके समान रूप वाला जग मे कोई दूसरा नही दिखाई देता। यदि उससे अधिक होते तो अपके समान दूसरा रूप भी होना चाहिए था पर दूसरा रूप है नही। इस प्रकार आप तीन लोको के शृगार है, आपकी दिव्य देह अद्वितीय सौन्दर्य से परिपूर्ण है। आपके मुख मण्डल पर प्रशान्त रस से अनुप्राणित तेज विम्वित है, क्यूकि आपका अन्तस् समरस से सरावोर है अस्तु आपका शरीर परम औदारिक देदीप्यमान है। वस्तुत आपका रूप अद्भुत, अनुपम और निरुपमेय है।

## मूलपाठ

**वक्त्रं क्व ते सुरनरोरगनेत्रहारि,**
**निःशेष-निर्जित-जगत्-त्रितयोपमानम् ।**
**विम्वं कलङ्क-मलिनं क्व निशाकरस्य**
**यद् वासरे भवति पाण्डुपलाशकल्पम् ॥१३॥**

अन्वयार्थ-(सुरनरोरगनेत्रहारि) देव, मनुष्य तथा नागेन्द्र के नेत्रो को हरण करनेवाला एव (नि शेषनिर्जित जगत्-त्रितयोपमानम्) जिसने तीनो जगत् की उपमाओ को सम्पूर्ण रूप से जीत लिया है, वह (ते वक्त्रम्) आपका मुख (क्व) कहाँ और (कलकमलिनम्) कलक से मलिन (निशाकरस्य) चन्द्रमा का (तद् विम्वम्) वह मण्डल (क्व) कहाँ, (यत्) जो (वासरे) दिन मे (पलाश-कल्पम्) ढाक के पत्ते की तरह (पाण्डु) पीला-फीका (भवति) हो जाता है। ॥१३॥

## पद्यानुवाद

*कहं तुम मुख अनुपम अविकार, सुर-नर-नाग नयन मन हार।*
*कहाँ चन्द्र-मण्डल सकलक, दिन मे ढाक पत्र सम रक॥*

## अर्थ-अभिप्राय

हे भगवन् । आपका सुन्दर मुख देवो, मनुष्यो और नागकुमारो के नेत्रो को आकर्षित करने वाला और तीनो लोको की समस्त श्रेष्ठ उपमाओ को जीतने वाला है। जो लोग चन्द्र विम्ब से आपके मुख की उपमा देते हें तो भी भूल हे, क्योकि चन्द्रविम्व तो दिन मे ढाक के सूखे पत्ते के सदृश फीका हो जाता हे और मृग के चिन्ह से मलिन हे। किन्तु आपका मुख निर्मल और सदा ही प्रकाशमान रहता हे।

ससार मे मुख की सुन्दरता की उपमा चन्द्रमा से दी जाती हे। प्राय यह कहा जाता है कि उसका मुख चान्द जैसा सुन्दर हे। परन्तु प्रभु आपके मुख की उपमा किसी भी पदार्थ से नही की जा सकती क्योकि आपका मुख रात-दिन प्रकाशित रहता है। जहाँ आप विराजमान होते है वहॉ आपकी ज्योति से दिन मे सूर्य ओर रात्रि मे चन्द्रमा की आवश्यकता नही है। क्यूकि हर समय उजाला ही उजाला रहता है। आपका शरीर वज्रऋषभनाराच सहनन अर्थात् गठन वनावट ही ऐसा हे जिसकी उपमा हम तीन लोक के किसी भी पदार्थ से नही कर सकते। जव पुण्योदय से सासारिक वस्तुओ की प्राप्ति होती हे तव जिनके तीर्थंकर प्रकृति के पुण्य का उदय हो उनका क्या कहना? अतएव प्रभु की उपमा किसी भी पदार्थ से नही कर सकते।

## मूलपाठ

**सम्पूर्णमण्डल-शशाङ्क-कलाकलाप-**
**शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लंघयन्ति ।**
**ये संश्रितास्-त्रिजगदीश्वर ! नाथमेकम्**
**कस्तान् निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥१४॥**

अन्वयार्थ–(सम्पूर्णमण्डल-शशाककलाकलापशुभ्रा) पूर्ण चन्द्रमण्डल की कलाओ के समान स्वच्छ (तव) आपके (गुणा ) गुण (त्रिभुवन्) तीनो लोको को (लघयन्ति) लाघ रहे है–सर्वत्र फैले हुए है। (ये) जो (एकम्) मुख्य रूप से (त्रिजगदीश्वरनाथम्) तीनो लोको के नाथ के (सश्रिता ) आश्रित हे, उन्हे (यथेष्टम्) इच्छानुसार (सचरत ) विचरण करते हुए (क ) कोन (निवारयति) रोकता है? कोई नही रोक सकता ॥१४॥

## पद्यानुवाद

*पूरन चद जोति छविवत, तुम गुन तीन जगत लंघत।*
*एक नाथ त्रिभुवन आधार, तिन विचरत को करै निवार॥*

## अर्थ-अभिप्राय

हे त्रिलोक के स्वामी ! पूर्णिमा के चन्द्रमण्डल की कलाओ के समान आपके अत्यन्त उज्ज्वल गुण तीनो लोको मे व्याप्त हे। अर्थात् तीन लोक मे फैले हुए हे। क्योकि जो गुण एक अर्थात् अद्वितीय स्वामी के आश्रय मे रहे हए हे उन्हे इच्छानुमार सर्वत्र विचरण करने से कौन रोक सकता है? अर्थात् कोई भी नही रोक सकता।

तीन लोको मे आपके अनत गुणो की व्याप्ति है। जेसे कोई महान सम्राट के बन्धु-वान्धव या परिजन विना रोक-टोक के मन-माने रूप मे जहाँ-कही घूमने के लिए स्वतत्र हैं और उन्हें रोकने का साहस कोई नही करता। उसी प्रकार आपके अनन्त गुण केवल आप तक ही सीमित नही है, वल्कि वे तो तीन लोको मे विपुलता से व्याप्त हो रहे हैं। जिस प्रकार चन्द्रमा की शुभ्रकलाएँ दोज से लेकर पूर्णमासी तक क्रमश विकासमान होती रहती हैं उसी प्रकार आपके उज्ज्वल धवल गुण पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान पूर्ण रूप से विकसित हो चुके है। जिस प्रकार से चन्द्रमा की ज्योत्स्ना से लोक का कोना-कोना व्याप्त हो जाता है उसी तरह आपके निर्मल गुणो से त्रैलोक्य प्रभावित है उनकी इस प्रभावना का प्रयोजन स्पष्ट है कि उन गुणो ने अन्य किसी देव का अवलम्बन नही लिया, वल्कि आपकी वीतरागता को ही एक मात्र अपना नाथ स्वीकारा है। आशय यह है कि जिनदेव के गुणो की चर्चा तीन कालो तथा तीन लोको मे होती ही रहती है। उस चर्चा को अथवा उनके द्वारा प्रणीत तत्त्वो को रोकने का साहस अथवा खडन करने का प्रयास आज तक किसी के द्वारा सम्भव नही हुआ।

## मूलपाठ

**चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभिर्**
**नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गम् ।**
**कल्पान्तकालमरुता चलिताचलेन,**
**किं मन्दराद्रिशिखरं चलितं कदाचित्? ॥१५॥**

अन्वयार्थ–(यदि) अगर (ते) आपका (मन) मन (त्रिदशागनाभि ) देवागनाओं के प्रदर्शन से (मनाक् अपि) जरा-सा भी (विकारमार्ग न नीतम्) विकार भाव को प्राप्त नही हो सकता, तो (अत्र) इस वात मे (किम् चित्रम्) आश्चर्य ही क्या है? (चलिताचलेन) पहाड़ो को भी हिला देनेवाले (कल्पान्तकालमरुता) प्रलयकाल के झझावात द्वारा (किम्) क्या (कदाचित्) कभी (मन्दराद्रिशिखरम्) मेरु पर्वत का शिखर (चलितम्) हिलाया जा सकता है? कभी नहीं ॥१५॥

## पद्यानुवाद

*जो सुरतिय विभ्रम आरम्भ, मन न डिग्यो तुम तो न अचम्भ।*
*अचल चलावै प्रलय समीर, मेरु शिखर डगमगै न धीर॥*

## अर्थ-अभिप्राय

हे वीतराग भगवन्त । स्वर्ग की सुन्दर अप्सराओं ने अपने हाव-भाव-विलासों के द्वारा आपको विचलित करने का भरसक प्रयत्न किया, परन्तु आपका चित्त

जरा-सा भी विचलित नही हुआ, सो इसमे कुछ भी आश्चर्य नही हे। प्रलयकाल का प्रचण्ड पवन वडे-वडे पर्वतो को चलायमान कर देता हे परन्तु क्या कभी वह सुमेरु के शिखर को भी कम्पित कर सका है? कदापि नहीं।

आपने अपने पूर्ण शुद्ध स्वभाव की प्राप्ति कर ली हे और इस प्रकार से पर-वस्तुओ का कुटिल प्रभाव आप पर किंचित् मात्र भी नही होता, आपका अन्तर् वाह्य परम वीतराग और निर्विकार है। आप ऐसे योगी और शुक्ल ध्यानी ह कि जिन्हे विचलित करने मे कोई भी समर्थ नही हे। यह तो सभी जानते हं कि विषयवासना ने तीन लोको पर विजय प्राप्त की है। महान योद्धा भी काम के वशीभूत होते देखे गए है। परन्तु आप एक ऐसे निरुपमेय महावीर है जिन्होने कि उस राग रूपी शत्रु पर विजय प्राप्त की हे जिसने तीन लोको को पराजित कर दिया था। आपने तो अपने पुरुषार्थ से आरम्भ मे ही दर्शन और चारित्र मोहनीय कर्मों का क्षय कर दिया। जिससे घातियाकर्मों की सेतालीस प्रकृतियाँ भी नेस्तनावूद हो गई। इस प्रकार रागद्वेष, मोह-माया, कामवासना पर अखण्ड विजय प्राप्त कर ली है और सदा अपने सम्यक् श्रद्धा, ज्ञान व ध्यान मे लीन रहते है उनको कोई कैसा भी निमित्त मिले, नही डिगा सकता। वस्तुत आप सुमेरु के सदृश धीर, वीर गम्भीर अचल दुस्सह परीषहजयी है।

## मूलपाठ

निर्धूमवर्तिरपवर्जित-तैलपूरः
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि ।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाशः ॥१६॥

अन्वयार्थ-(नाथ !) हे स्वामिन् ! आप (निर्धूमवर्ति ) धुएँ तथा वाती से रहित, निर्दोप प्रवृत्ति वाले और (अपवर्जित तेलपूर ) तेल से शून्य होकर भी (इदम्) इस (कृत्स्नम्) समस्त (जगत्त्रयम्) त्रिभुवन को (प्रकटी करोपि) प्रकाशित कर रहे हे, तथा आप (चलिताचलानाम) पर्वतो को कम्पायमान कर देने वाली (मरुताम्) हवाओ के लिए (गम्यो न) गम्य नही हे-वे भी आप पर असर नही कर सकती। इस तरह (त्वम्) आप (जगत्-प्रकाश ) ससार को प्रकाशित करने वाले, (अपर दीप ) अद्वितीय दीपक (असि) है ॥१६॥

## पद्यानुवाद

*धूम रहित वाती गत नेह, परकाशे त्रिभुवन घर एह।*
*वात-गम्य नाहीं परचण्ड, अपर दीप तुम वलो अखड॥*

## अर्थ-अभिप्राय

लौकिक दीपक तो घर के किसी एक कोने को ही प्रकाशित करता है और उसमे तेल-बत्ती की आवश्यकता रहती है, धूम छोडता है और वायु के हल्के से झोंके से ही बुझ जाता है, किन्तु हे नाथ ! आप तेल, बत्ती और धूम रहित दीपक हे अर्थात् हे प्रभु ! आप सम्पूर्ण जगत को एक साथ प्रकाशित करने वाले एक अलौकिक दीपक हो। आपको न बत्ती की आवश्यकता है, न तेल की अपेक्षा है, न आप से धूम निकलता हे और बडे-बडे पर्वतो को कम्पित करने वाली प्रचण्ड हवा भी आप पर कुछ भी असर नही कर सकती अत आप लौकिक दीपक की अपेक्षा अद्वितीय दीपक हे।

हे परम ज्योति ! आप एक अद्वितीय अपूर्व दीपक ह जिसमे क्षायिक केवल्य ज्ञान की शाश्वत अखड ज्योति के परिपेक्ष्य मे तीन लोको के समस्त पदार्थ एक साथ अपनी द्रव्य गुण पर्यायो से युक्त स्वयमेव प्रकाशमान हे। आपका जीवन राग से नहीं बल्कि वीतरागता के चैतन्य पाणो से देदीप्यमान हे। आप अपने मे परिपूर्ण शुद्ध ओर एक होने से किसी पर वस्तु की अपेक्षा नही रखते, अव्याबाध सुख-प्राप्ति हेतु आपको सासारिक विषमताएं बाधा पहुँचाने मे समर्थ नही हे। अतएव आप लौकिक दीपक से सर्वथा भिन्न एक अलौकिक स्व-परप्रकाशक, अविनाशी अपूर्व चिन्मय दीपक हे।

## मूलपाठ

**नास्तं कदाचिदुपयासि न राहुगम्यः,**
**स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति ।**
**नाम्भोधरोदर-निरुद्धमहाप्रभावः,**
**सूर्यातिशायिमहिमासि मुनीन्द्र ! लोके ॥१७॥**

अन्वयार्थ–(मुनीन्द्र !) हे मुनियो के इन्द्र ! आप (कदाचित्) कभी भी (न अस्त उपयासि) न अस्त होते हे (न राहुगम्य ) न राहु के द्वारा ग्रस्त होते हैं और (न अम्भोधरोदरनिरुद्ध-महाप्रभाव.) न मेघ से ही आप का महान् तेज अवरुद्ध हो सकता है। आप तो (युगपत्) एक साथ (जगन्ति) तीनो लोको को (सहसा) शीघ्र ही (स्पष्टी करोषि) प्रकाशित करते हे। इस प्रकार आप (लोके सूर्यातिशायि महिमा असि) जगत् मे सूर्य से बढकर महिमा वाले हे ॥१७॥

## पद्यानुवाद

*छिपहु न लुपहु राहु की छाहि, जग-परकाशक हो छिन माहि।*
*घन-अनवर्त दाह विनिवार, रवि तैं अधिक धरो गुणसार॥*

## अर्थ-अभिप्राय

हे मुनीश्वर ! आप सूर्य से भी अधिक विलक्षण महिमाशाली हो। सूर्य प्रतिदिन उदित होता है और सन्ध्या के समय अस्त हो जाता है किन्तु आपका केवलज्ञान रूप सूर्य सदैव प्रकाशमान रहता है। सूर्य को राहु ग्रसित कर लेता है, किन्तु आपके ज्ञान आलोक को कोई भी दुष्कृत रूप राहु ग्रसित नहीं कर सकता। सूर्य सीमित क्षेत्र को प्रकाशित करता है और वह भी क्रम-क्रम से, किन्तु आप तो तीन जगत को एक साथ केवल ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित करते हैं। सूर्य का प्रकाश मेघो से ढँक दिया जाता है किन्तु आपके महाप्रभाव को ससार मे कोई भी पदार्थ अवरुद्ध नही कर सकता, यानि ज्ञानावरणीय कर्म नष्ट हो चुका है। अत आप सूर्यातिशायि महिमा वाले हो।

हे कैवल्य ज्ञान मार्तण्ड ! सूर्य उदय होकर अस्ताचल को जाता है। परन्तु आपका स्वभाव रूपी सूर्य कभी अभाव को प्राप्त होने वाला नही है। सक्रमण कालो मे सूर्य पर जो राहु आदि ग्रहो की काली छाया पड जाती है और उसके फलस्वरूप सूर्य का प्रताप निस्तेज हो जाता है, परन्तु आप पर सासारिक विकाररूपी ग्रहो की छाया कभी भी नही पड़ती। आपका प्रताप पुज शाश्वत रहता है। क्यूंकि सूर्य दिन मे प्रकाश देता है, रात मे नही। सूर्य खुले स्थानो को आलोकित करता है, आच्छन्न स्थानो को नही। परन्तु आपका केवल ज्ञान रूपी सूर्य तीन जगत के चराचर पदार्थों को तीन कालो मे एक साथ ही प्रकाशित करता रहता है। सार रूप मे कह सकते हैं कि श्रमण परम्परा मे वीतराग, सर्वज्ञ और हितोपदेशी को ही देव माना है, पूज्य माना है, उन्ही को नमन किया है, किसी अन्य को नहीं।

## मूलपाठ

**नित्योदयं दलितमोहमहान्धकारं**
**गम्यं न राहुवदनस्य न वारिदानाम् ।**
**विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति–**
**विद्योतयज्जगदपूर्वशशाङ्कविम्बम् ॥१८॥**

अन्वयार्थ–(नित्योदयम्) हमेशा उदय रहने वाला, (दलितमोह-महान्धकारम्) मोहरूपी महान् अन्धकार का नाशक, (राहुवदनस्य न गम्यम्) राहु के मुख द्वारा ग्रस्त नही होता (वारिदाना न गम्यम्) बादलो के द्वारा ढक नही जाता (अनल्प-कान्ति) अधिक कातिमान् ओर (जगत् विद्योतयत्) ससार को प्रकाशित करता हुआ (तव मुखाब्जम्) आपका मुख कमल (अपूर्व शशाक विम्बम्) अपूर्व चन्द्र-विम्ब के रूप मे (विभ्राजते) सुशोभित हो रहा हे ॥१८॥

## पद्यानुवाद

*सदा उदित विदलित मन मोह, विघटित मेघ राहु-अवरोह।*
*तुम मुख कमल अपूरव चन्द, जगत विकाशी जोति अमन्द॥*

## अर्थ-अभिप्राय

हे भगवन्! आपका मुख कमल एक विलक्षण चन्द्रमा है। नभ का चन्द्र तो केवल रात्रि मे ही उदित होता है किन्तु आपका मुख-चन्द्र सदा ही उदयरूप रहता है। चन्द्रमा थोडे से बाह्य अन्धकार का नाश करता है परन्तु आपका मुख चन्द्र मोहरूपी आतरिक घोर अन्धकार का विनाश करता है। चन्द्र को राहु केतु ग्रसित करता है ओर मेघ भी आच्छादित कर लेता है परन्तु आपके मुखरूप चन्द्र को अज्ञान रूप अन्धकार आच्छादित नही कर सकता है ओर दुष्कृत रूप राहु केतु ग्रसित नहीं कर सकता। चन्द्रमा पृथ्वी के कुछ भाग को ही प्रकाशित करता है किन्तु आपका मुख चन्द्र सम्पूर्ण लोक को प्रकाशमान करता है। नभ का चन्द्र अल्पकान्ति का धारक, हानि-वृद्धिमय है किन्तु आपका मुख चन्द्र सदा अनन्त कांतिधारक है। अत आपका मुख चन्द्र एक अपूर्व अलौकिक चन्द्र है।

लौकिक चन्द्रमा तो उदय भी होता है ओर अस्त भी किन्तु आपका ओजमय मुखमण्डल रूपी चन्द्र न तो उदय ही होता है और न अस्त ही। भगवान के शरीर से निकलने वाली कान्ति हजारो चन्द्र-सूर्य की कान्ति से भी अधिक होती है जिससे तीन लोको मे एक साथ प्रकाश फैलता है। चन्द्रमा रात्रि का अन्धकार तो दूर कर सकता है परन्तु मोहान्धकार नही। हे प्रभो! वह आप ही दूर कर सकते हैं। इस प्रकार लौकिक चन्द्रमा की ज्योत्स्ना बादलो से पराभूत हो जाती है किन्तु आपके गुणो की शुभ्र ज्योत्स्ना को किसी भी प्रकार का आवरण रोक नही पाता। लौकिक चन्द्रमा तो अपना प्रकाश सीमित क्षेत्र मे प्रसारित कर पाता है जब कि आपका ज्ञानालोक तीन लोको मे विकीर्ण रहता है।

## मूलपाठ

**किं शर्वरीषु शशिनाऽह्नि विवस्वता वा ?**
**युष्मन्मुखेन्दु- दलितेषु तमस्सु नाथ !**
**निष्पन्नशालिवनशालिनि जीवलोके**
**कार्यं कियज्जलधैरर् जलभार-नम्रैः ॥१९॥**

अन्वयार्थ-(नाथ!) हे स्वामिन्! (युष्मन्मुखेन्दु-दलितेषु तमस्सु) आपके मुखरूप चन्द्रमा के द्वारा अन्धकार के नष्ट हो जाने पर (शर्वरीषु) रात्रि मे

(शशिना) चन्द्रमा से (वा) अथवा (अह्नि) दिन मे (विवस्वता) सूर्य से (किम्) क्या प्रयोजन है? (निष्पन्नशालिवनशालिनि) पेदा हुए धान्य के वनो से शोभायमान (जीवलोके) ससार मे (जलभारनम्रे ) पानी के भार से झुके हुए (जलधरे ) वादला से (कियत् कार्यम्) कितना काम रह जाता हे? कुछ भी नही ॥१९॥

## पद्यानुवाद

*निश दिन शशि रवि को नहि काम, तुम मुखचन्द हरै तम-धाम।*
*जो स्वभावतैं उपजै नाज, सजल मेघ तैं कौनहु काज॥*

## अर्थ-अभिप्राय

हे स्वामी ! आपके मुख रूपी चन्द्रमा से अन्धकार के नष्ट हो जाने पर रात्रि मे चन्द्रमा से और दिन मे सूर्य के प्रकाश से क्या प्रयोजन हे? ससार मे खेतो मे धान्य के परिपक्व हो जाने पर पानी से भरे हुए वादलो से क्या प्रयोजन हे? अर्थात् कुछ भी नही।

हे भगवन् ! जब आपके केवल ज्ञान रूपी प्रकाश ने अन्तरग और वहिरग दोनो प्रकार के अन्धकार को दूर कर दिया तव सूर्य-चन्द्रमा की कोई आवश्यकता नही रही। सूर्य केवल दिन मे और चन्द्रमा रात्रि मे ही सीमित प्रकाश करता हे परन्तु आपके समवशरण अर्थात् विशेष धर्म सभा मे आपके केवल ज्ञान रूपी सूर्य का रात-दिन हर समय इतना प्रकाश रहता है कि वहॉ सूर्य-चन्द्रमा की जरूरत ही नही पडती। इसी प्रकार जव धान की अर्थात् अनाज की फसल पक कर कटने के लिए तैयार खड़ी हो उस समय पानी का वरसना वेकार हे। आशय यह हे कि जव प्राणियो का मोहान्धकार ही समाप्त हो चुका हो तव रात्रि मे चन्द्रमा और दिन मे सूर्य के चमकने से क्या लाभ? असल मे आत्मा के स्वाभाविक प्रकाश की तुलना हम किसी पौद्गलिक प्रकाश यथा–दीपक, विजली, चन्द्र, सूर्य आदि से नही कर सकते। आत्मा के दिव्य प्रकाश के आगे यह सव उपोदय नही हे। यदि अपने वस्तुस्वरूप पर विचारे तो विदित होता हे कि हम सयोग-वियोग के कारण ही दु:खी होते आ रहे हे। यथार्थ स्वरूप के समझने पर, श्रद्धावान हो तद्रूप आचरण हो जाने पर इन दु:खो से मुक्ति मिल सकती हे।

## मूलपाठ

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं
नैवं तथा हरिहरादिषु नायकेषु ।
तेजः स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥२०॥

अन्वयार्थ-(त्वयि) आप में (कृतावकाशम्) अवकाश स्थान को प्राप्त (ज्ञानम्) ज्ञान (यथा) जिस प्रकार (विभाति) शोभायमान होता है (एव तथा) उस प्रकार (हरिहरादिषु) विष्णु-शंकर आदि (नायकेषु) देवो में (न विभाति) सुशोभित नहीं होता (स्फुरन्मणिषु) चमकती हुई मणियो में (तेज) तेज (यथा) जैसा (महत्त्व याति) महत्त्व पाता है, (तु एव) वैसा महत्त्व तो (किरणाकुले अपि) किरणो से व्याप्त (काचशकले) कॉच के टुकडे पर (न याति) नही पाता ॥२०॥

## पद्यानुवाद

*जो सुबोध सोहे तुम माँहि, हरि हर आदिक मे सो नाहि।*
*जो द्युति महा रतन मे होहि, कॉच खण्ड पाव नहि सोय॥*

## अर्थ-अभिप्राय

अनन्त पर्यायात्मक पदार्थों को प्रकाशित करने वाला केवल ज्ञान आप मे पूर्ण रूप से सुशोभित हो रहा है वैसा हरि अर्थात् विष्णु, हर अर्थात् महेश ब्रह्मा और नायको मे अर्थात् लौकिक देवो में नही है। क्योकि जैसा प्रकाश स्फुरायमान मणियो मे गौरव को प्राप्त होता है वैसा किरणो से चमकने वाले कॉच के टुकडो मे नही है।

केवल ज्ञान की ऐसी स्वाभाविक महिमा है जिसमे अनन्त पदार्थों की भूत, भविष्यत् और वर्तमान की सब पर्याये एक साथ झलकती है। केवली के अतिरिक्त ऐसा ज्ञान किसी को नही होता। ऐसा ज्ञान पूर्ण वीतरागी को ही होता है, सरागी को नही। उसी प्रकार जो चमक सच्चे महारत्नो मे होती है वैसी चमक कॉच के टुकडे मे सूर्य की किरणो के ग्रहण करने पर भी नही हो सकती। वस्तुतः स्व-पर प्रकाशक कैवल्य ज्ञान के समक्ष क्षायोपशमिक और क्षायिक ज्ञानो की क्या बिसात है?

## मूलपाठ

**मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा,**
**दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति ।**
**किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,**
**कश्चिन्मनो हरति नाथ ! भवान्तरेऽपि ॥२१॥**

अन्वयार्थ-(नाथ !) हे स्वामिन् (मन्ये) मै मानता हूँ कि (दृष्टा) देखे गए (हरि-हरादय एव) विष्णु-महादेव आदि देव ही (वरम्) अच्छे है। (येषु दृष्टेषु) जिनके देखे जाने पर (हृदयम्) मन (त्वयि) आपके विषय मे (तोषम् एति) सन्तुष्ट

हो जाता है। (भवता) आपके (वीक्षितेन) दर्शन से (किम्) क्या लाभ हे? (येन) जिससे कि (भुवि) पृथ्वी पर (अन्य कश्चित्) दूसरा कोई देव (भवान्तरेऽपि) दूसरे जन्म मे भी (मन·) चित्त को (न हरति) हर नही पाता ॥२१॥

## पद्यानुवाद

*सराग देव देख मैं भला विशेष मानिया,*
*स्वरूप जाहि देख वीतराग तू पिछानिया।*
*कछू न तोहि देख के जहाँ तुही विशेखिया,*
*मनोग चित्त चोर और भूल हू न पेखिया॥*

## अर्थ-अभिप्राय

हे प्रभो ! हरि-हर आदि देवो को देखना अच्छा हे, क्योकि उन्हे देखकर भी अन्त·करण को सतोष और शाति नही मिलती हे। इसका कारण यह हे कि उनकी रागद्वेष मलिन मुद्रा से पूर्ण शाति-लाभ नही होता है अस्तु अतृप्त ही वना रहता हूँ और आपकी परम वीतराग मुद्रा से पूर्ण शाति लाभ होता हे अत आप मे मन रम जाता है तथा आपके प्राप्त हो जाने से ससार मे जन्म-जन्मान्तर मे भी कोई देवी-देवता मन को हरण नही कर सकता। अर्थात् हरि-हर आदि की सरागी मुद्रा देखने वालो को आपकी वीतरागता अपनी ओर सहज ही मे आकर्षित कर लेती हे। क्योकि परम शाति यही मिलती है। परन्तु आपकी शरण मे प्राप्त जीवो को कोई आकर्षित नही कर सकता, क्योकि यही पर परमशाति लाभ होने से चिर तृप्ति हो जाती है।

हे देवाधिदेव ! यह सुखद रहा कि मैने अच्छे-श्रेष्ठ सरागीदेवो का स्वरूप पूर्व मे जान लिया तदुपरान्त वीतरागी स्वरूप से परिचित हुआ। यह सामान्य दृष्टिकोण हे कि एक प्रकार की दो वस्तुओ के देखने पर ही, उनकी तुलना करने पर ही ‘、 विशेष से वाकिफ होना होता है, उसमे से फिर श्रेष्ठता का वोध होता हे। न । की श्रेष्ठता निर्धन की तुलना मे ही की जा सकती हे। इसी प्रकार प्रकाश की अन्धकार से, दिन की रात्रि से, ज्ञानी की अज्ञानी से, वलवान की निर्वल आदि की तुलना से यथार्थ वस्तु का ही मूल्याकन किया जा सकता है। इसी प्रकार वीतरागता की तुलना सरागता से करने पर ही वीतरागता की श्रेष्ठता का वोध होता हे।

## मूलपाठ

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता ।

**सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं,**
**प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदंशुजालम् ॥२२॥**

अन्वयार्थ–(स्त्रीणा शतानि) सेकडो स्त्रियाँ (शतश ) सेकडो (पुत्रान्) पुत्रो को (जनयन्ति) जन्म देती हे, लेकिन (त्वदुपमम्) आप जेसे (सुतम्) पुत्र को (अन्या जननी) दूसरी कोई माता (न प्रसूता) पेदा नही कर सकी। (भानि) नक्षत्रो को (सर्वा दिश ) सब दिशाएँ (दधति) धारण करती हे, परन्तु (स्फुरदशुजाल सहस्ररश्मिम्) चमकती किरणो के समूह वाले सूर्य को (प्राची दिक् एव) पूर्व दिशा ही (जनयति) प्रकट करती है। ॥२२॥

## पद्यानुवाद

*अनेक पुत्रवतिनी नितम्बिनी सपूत है,*
*न तो समान पुत्र और मात तें प्रसूत है।*
*दिशा धरत तारिका अनेक कोटि को गिनै,*
*दिनेश तेजवन्त एक पूर्व ही दिशा जनै॥*

## अर्थ-अभिप्राय

ससार मे सैकडो ही स्त्रियॉ सेकडो पुत्रो को जन्म देती है किन्तु आपके समान महप्रतापी पुत्र रत्न अन्य किसी माता ने जन्म नही दिया। वेसे तो सभी दिशाएँ अनेक ताराओ को धारण करती हे किन्तु प्रकाशमान सूर्य को केवल एक पूर्व दिशा ही प्रकट करती हे।

हे मरुदेवि-नाभिनन्दन । धन्य है कि आप जैसे महापुरुष को, जिसने कि अपनी माता की कुक्षि से जन्म लेकर न केवल भूमण्डल को कृतार्थ किया परन्तु आप जेसे लाल को पाकर माता भी धन्य-अनन्य हो उठी। वह माता आप से भी अधिक धन्य हे जिसने आप जेसे त्रिलोकीनाथ को जन्म देकर स्वय को ही कृतार्थ नही किया वल्कि तीन लोक भी कृतकृत्य हो गए। आज के युग मे मानव समाज की सन्तानोत्पत्ति की सख्या कीडे-मकोडो जैसी हो गई है तो भी उससे न तो विश्व का ही कल्याण हो रहा हे ओर न स्वय का। करोडो माताएँ करोडो पुत्रो को उत्पन्न करती हें परन्तु इतनी वडी सख्या होने पर भी उनकी शक्ति की तुलना आपके अतुलवल से नहीं की जा सकती। यही कारण हे कि न तो आप जेसे पुत्र ही इस वसुन्धरा पर दिखाई देते हे ओर न आप जैसे को जन्म देने वाली माताएँ ही दिखाई देती हे।

## मूलपाठ

**त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-**
**मादित्यवर्णममलं तमसः परस्तात् ।**
**त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं**
**नान्यः शिवः शिवपदस्य मुनीन्द्र ! पन्थाः ॥२३॥**

अन्वयार्थ–(मुनीन्द्र) हे मुनियो के नाथ ! (मुनय ) मननशील मुनि (त्वाम्) आपको (आदित्यवर्णम्) सूर्य की तरह तेजस्वी; (अमलम्) निर्मल और (तमस· परस्तात्) मोह-अन्धकार से परे रहने वाले, (परम पुमासम्) परम पुरुष (आमनन्ति) मानते है। वे (त्वाम् एव) आपको ही (सम्यक्) अच्छी तरह से (उपलभ्य) प्राप्त कर (मृत्युम्) मृत्यु को (जयन्ति) जीतते है। (शिवपदस्य) मोक्ष पद का, इसके सिवाय (अन्य ) दूसरा (शिव ) कल्याणकर (पन्था ) मार्ग (न अस्ति) नही है ॥२३॥

## पद्यानुवाद

*पुरान हो पुमान हो पुनीत पुण्यवान हो,*
*कहै मुनीश अन्धकार नाश को सुभान हो।*
*महंत तोहि जान के न होय वश्य काल के,*
*न और कोइ मोख पन्थ देय तोहि टाल के॥*

## अर्थ-अभिप्राय

हे मुनीश्वर ! मुनिजन आपको सूर्य के समान तेजस्वी, रागद्वेष आदि से रहित निर्मल और अज्ञानरूप अन्धकार से विमुक्त परम श्रेष्ठ पुरुष मानते हैं। जो लोग हृदय से भली भाँति आपकी उपासना करते है, वे मृत्यु पर विजय प्राप्त कर हैं अतः आपको छोड़कर मोक्ष पद का दूसरा कल्याणकारी मार्ग नही है।

हे मुनीन्द्र ! मुनिजन आपको परम पुरुष मानते है। रागद्वेषादि कर्ममल रहित होने से निर्मल मानते ह। मोह तिमिर नष्ट करने के कारण सूर्य के समान तेजस्वी मानते हे ओर मन, वचन, काय की शुद्धि पूर्वक आपकी भली प्रकार आराधना करके वे मृत्यु विजयी होकर अजरामर पद प्राप्त करते हैं, अतएव आपको मृत्युजय मानते ह। सच तो यह ह कि आपको छोडकर मोक्ष का कोई कल्याणकारी श्रेष्ठ मार्ग नही ह अत आपको ही वे मोक्ष का मार्ग मानते ह। हे ऋषभनाथ ! लौकिक जन आपको शिवशकर अथवा कैलाशपति के नाम से भी पुकारते ह। शिव कल्याण को कहते ह और पन्था मार्ग को कहते ह। इस प्रकार से जिसने प्रशस्त,

निरुपद्रव और कल्याणकारी मार्ग का दिग्दर्शन कराया हो वह शिव नही तो ओर क्या है? वस्तुत इस मार्ग द्वारा जिस पद अथवा मजिल की प्राप्ति होती हे उस पद को शिव पद कहा जाता हे और ऐसा शिवपद अर्थात् अव्यावाध निराकुल सुख निर्वाण है जिसे आपने प्राप्त कर लिया हे। अतएव आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी शिव महादेव नही हो सकते।

## मूलपाठ

**त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं,**
**ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्गकेतुम् ।**
**योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं,**
**ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥२४॥**

अन्वयार्थ–(सन्त ) साधु-सन्त (त्वाम्) आपको (अव्ययम्) अविनाशी (विभुम्) व्यापक (अचिन्त्यम्) अचिन्त्य (असख्यम्) असख्य (आद्यम्) आदि (ब्रह्माणम्) ब्रह्मा (ईश्वरम्) ईश्वर (अनन्तम्) अनन्त, (अनगकेतुम्) कामदेव के सहारार्थ केतु-तुल्य (योगीश्वरम्) योगीश्वर (विदितयोगम्) योग के वेत्ता, (अनेकम्) अनेक (एकम्) एक (ज्ञान-स्वरूपम्) ज्ञान स्वरूप ओर (अमलम्) निर्मल (प्रवदन्ति) कहते हैं ॥२४॥

## पद्यानुवाद

*अनन्त नित्य चित्त के अगम्य रम्य आदि हो,*
*असख्य सर्वव्यापि विष्णु ब्रह्म हो अनादि हो।*
*महेश कामकेतु योग-ईश योग ज्ञान हो,*
*अनेक एक ज्ञान रूप शुद्ध सन्त-मान हो॥*

## अर्थ-अभिप्राय

हे नाथ ! सन्तपुरुष तुम्हें अव्यय (अनन्तज्ञानादिस्वरूप होने से अक्षय), विभु (परमैश्वर्यशाली अथवा ज्ञान की अपेक्षा व्यापक), अचिन्त्य (चिन्तवन में नहीं आने वाले अर्थात् पूर्ण रूप से न जान सकने रूप), असख्य (आपके गुणों की सख्या नहीं) आद्य (आदि तीर्थंकर), ब्रह्मा (मोक्षमार्ग का सच्चा विधान करने वाले), ईश्वर (कृतकृत्य अर्थात् समस्त आत्मविभूति के स्वामी या तीन लोक के नाथ), अनन्त (जिसका अत न हो, अविनश्वर अर्थात् अनन्त चतुष्टय सहित), अनगकेतु (शरीर रहित या अनुपम सुन्दर अर्थात् कामदेव के नाश करने के लिए केतु रूप), योगीश्वर (ध्यानियो के प्रभु), विदितयोग (ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप योग के जानने

वाले), अनेक (अनन्त गुण पर्याय की अपेक्षा से), एक (अद्वितीय), ज्ञान स्वरूप (केवल ज्ञान स्वरूप) और कर्ममल रहित होने से अमल-निर्मल कहते है।

हे भगवन ! आप कभी अपने स्वरूप से च्युत नही होते अत आप अव्यय है। आपका ज्ञान सम्पूर्ण पदार्थो को जानता है एतदर्थ आप व्यापक ह। वडे ज्ञानी पुरुप भी आपके पूर्ण स्वरूप का चिन्तवन नही कर पाते इसलिए आप अचिन्त्य ह। आपके गुण सख्यातीत है अत आप असख्य है। इस अवसर्पिणी काल के चोवीस तीर्थंकरो मे सवसे प्रथम हुए इसलिए आप आद्य है। कर्मभूमि के प्रारम्भ मे जीवन-निर्वाह की वहोत्तर (७२) एव चौसठ (६४) कलाओ की शिक्षा देने तथा मोक्षमार्ग का विधान करने के कारण आप 'व्रह्मा' हैं। आप अनन्त शक्ति के धारक होने से ईश्वर है। अनन्त गुणो के धारक होने से आप अनन्त है। काम को जीतने से आप अनगकेतु कहलाते है। योगियो के भी ईश्वर होने से आप योगीश्वर है। आप ध्यान योग के ज्ञाता है, गुण पर्याय की अपेक्षा अनेक और द्रव्य की अपेक्षा एक ह। ज्ञानस्वरूप है और निर्मल है। ऐसा सन्तजन आपके गुणो का वर्णन करते है।

## मूलपाठ

**बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित ! बुद्धि-बोधात्,**
**त्वं शङ्करोऽसि भुवनत्रय-शङ्करत्वात् ।**
**धाताऽसि धीर ! शिवमार्गविधेर् विधानात्,**
**व्यक्तं त्वमेव भगवन् ! पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥**

अन्वयार्थ–(विवुधार्चितवुद्धि-वोधात्) आपकी वुद्धि का वोध–ज्ञान, देवा अथवा विद्वानो द्वारा पूजित होने से (त्वमेव) आप ही (वुद्ध ) वुद्ध है। (भुवनत्रय-शकरत्वात्) तीनो लोको मे सुख-शान्ति करने के कारण (त्वम्) आप ही (शकर असि) शकर–महादेव हे। (शिवमार्गविधे विधानात्) मोक्ष–मार्ग की विधि का विधान करने से (धीर !) हे धीर ! (त्वमेव) आप ही (धाता असि) विधाता–व्रह्मा हे ओर (भगवन्) हे भगवान् ! (व्यक्तम्) स्पष्टत (त्वमेव) आप ही (पुरुपोत्तम असि) पुरुपो मे उत्तम–विष्णु हे॥२५॥

## पद्यानुवाद

*तुही जिनेश वुद्ध हे सुवुद्धि के प्रमान तें,*
*तुही जिनेश शकरो जगत्त्रयी विधान तें।*
*तुही विधात ह सही सुमोख पथ धारत,*
*नरोतमो तुही प्रसिद्ध अर्थ के विचार तें॥*

## अर्थ-अभिप्राय

हे प्रभो, आपके केवल ज्ञान की गणधरो ने अथवा देवो ने पूजा की है, अत आप ही 'वुद्ध देव' है। आप लोकत्रयवर्ती जीवो का आत्मकल्याण करने वाले है, इसलिए आप ही शकर है। हे धीर, आपने रत्नत्रयस्वरूप मोक्ष मार्ग का सत्यार्थ उपदेश दिया है, अत आप ही विधाता-ब्रह्मा है। हे भगवन्, उपरोक्त गुणो से विभूषित होने के कारण आप ही साक्षात् पुरुषश्रेष्ठ श्रीकृष्ण है अर्थात् वुद्ध, शकर (महादेव), ब्रह्मा और श्रीकृष्ण आदि को ससारी जीव देवो के नाम से पुकारते हैं। परन्तु अद्वितीय लोकोत्तर गुणो से विभूषित होने के कारण आप ही सच्चे देव हैं।

वस्तु मे तीन गुण पाए जाते है-(1) उत्पाद (11) व्यय (111) ध्रौव्य। उनका सच्चा स्वरूप वताने वाले और उस मार्ग पर चलकर अपनी आत्मा का कल्याण करके ससार को जग-जाल से छुडाने का, मार्ग का दिग्दर्शन कराने वाले वास्तव मे आप ही है। हे प्रभु ! आपको ससार कितने ही नामो से याद करता है परन्तु वे वास्तविक स्वरूप का ज्ञान न होने से अन्यथा रूप मे भी मानने लगे हैं, जो ए भ्रांति है। आपने वस्तु का स्वरूप जैसा देखा, जाना, अनुभव किया उसका वैसा विधान विधि पूर्वक जनकल्याण के लिए वताया इसलिए आप ही वुद्ध, ब्रह्मा, विष्णु, महेश और कृष्ण है।

## मूलपाठ

**तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ !**
**तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय ।**
**तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय**
**तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधि-शोषणाय ॥२६॥**

अन्वयार्थ-(नाथ) हे स्वामिन् ! (त्रिभुवनार्तिहराय) तीनो लोको की पीडा--दुःख को हरण करने वाले (तुभ्य नम·) आपको नमस्कार हो। (क्षितितलामल-भूषणाय) भूतल के निर्मल आभूषणरूप (तुभ्य नम ) आपको नमस्कार हो। (त्रिजगत परमेश्वराय) तीनो जगत् के परमेश्वर रूप (तुभ्य नम ) आपको नमस्कार हो और (जिन !) हे जिनेश्वर ! (भवोदधि-शोषणाय) ससार-समुद्र को सुखाने वाले (तुभ्य नम ) आपको नमस्कार हो ॥२६॥

## पद्यानुवाद

*नमो करूं जिनेश तोहि आपदा-निवार हो,*
*नमों करू सुभूरि भूमि-लोक के सिंगार हो।*

*नमो करूं भवाब्धि-नीर-राशि-शोष हेतु हो,*

*नमो करू महेश तोहि मोखपथ देतु हो॥*

## अर्थ—अभिप्राय

हे भगवन् ! तीन लोको की पीडा को हरने वाले आपको नमस्कार हे। भूतल अर्थात् भूमण्डल के निर्मल अभूपण ! आपको नमस्कार है। तीन जगत् के परमेश्वर! आपको नमस्कार है। हे जिनेन्द्र ! भव सागर के सुखाने वाले अर्थात् जीवो को मोक्ष पहुँचाने वाले, आपको नमस्कार है।

जीव चारो गतियो की चौरासी लाख योनियो मे राग-द्वेप, मिथ्यात्व, मोहान्धकार आदि के कारण भ्रमण करता है उसके दूर करने मे भगवान् आप निमित्त हैं इसलिए आपको नमस्कार करता हूँ। हे प्रभु ! आप तो अनन्त गुणो के भण्डार हैं, आपके उज्ज्वल गुणो को देवताओ, महात्माओ, विद्वानो द्वारा बखान करना प्राय असम्भव है फिर मेरे जैसे अल्पज्ञ द्वारा आपके गुणो का वर्णन करना सम्भव नहीं है। रत्न, माणिक, मोतियो के आभूषण जगत् के रागी प्राणियो के शृगार हैं लेकिन जिसे अपनी आत्मा का बोध हो गया, जो पूर्ण रूप से प्रकट होने पर 'केवलज्ञान' कहलाता है वही उसका आभूषण है। असल मे सर्वज्ञता वह आभूषण है जो अद्वितीय है उसकी प्राप्ति के हेतु आप हैं अस्तु आपको नमस्कार करता हूँ। आवागमन-जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा दिलाने वाले, आपको म नमस्कार करता हूँ।

## मूलपाठ

**को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-**

**स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश !**

**दोषैरुपात्त-विविधाश्रय-जातगर्वैः,**

**स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥**

अन्वयार्थ–(मुनीश!) हे मुनियो के स्वामी ! (यदि नाम) यदि (निरवकाशतया) अन्य स्थल में अवकाश न मिलने के कारण (अशेषै· गुणै·) समस्त गुण (त्वम्) आप के (संश्रित ) आश्रित हो गए हैं, इसलिए (उपात्त-विविधाश्रय- जातगर्वै ) अनेक जगह आश्रय प्राप्त होने के कारण जिन्हें गर्व हो गया है, उन (दोपै ) दोषों के द्वारा (स्वप्नान्तरेऽपि) सपने मे भी (कदाचित् अपि) कदापि (न ईक्षित असि) आप नहीं देखे गए हैं, तो (अत्र) इस विषय मे (क विस्मय ) क्या आश्चर्य है? कुछ भी नहीं ॥२७॥

## पद्यानुवाद

*तुम जिन पूरण गुणगण भरे, दोप गर्वकरि तुम परिहरे।*
*और देवगण आश्रय पाय, स्वप्न न देखे तुम फिर आय॥*

## अर्थ–अभिप्राय

हे मुनीश्वर ! समस्त सद्गुणो ने आप मे सघन आश्रय पाया है अतएव दोषो को आप में जरा-सा भी स्थान नही मिला। फलस्वरूप उन्होने अन्य अनेक देवताओ में स्थान प्राप्त किया ओर इसलिए वे गर्व को प्राप्त हो गए हैं। फिर भी वे स्वप्न में भी कभी आपको लौटकर देखने को नही आये सो इसमे आश्चर्य की कौन-सी वात है? जिसे अन्यत्र आदर मिलेगा, वह भला आश्रय न देने वाले व्यक्ति के पास लौटकर क्यो आएगा?

ससार के समस्त सद्गुणो ओर दुर्गुणो की तुलना करते हुए समझाया है कि वीतरागता जैसे गुणो को सरागी देवो तथा अन्य मिथ्यात्वी लोगो ने अपनी शरण मे नहीं लिया इसलिए वह सब सद्गुण उनका आसरा छोडकर आपकी शरण मे आ गए हें तथा दुर्गुणो को अन्य सरागी देवो और मिथ्यादृष्टि लोगो का आसरा मिल जाने से उनको इस वात का गर्व हो गया मालूम होता हे कि यदि एक स्थान पर हमे शरण न मिली तो क्या हुआ हमे तो शरण मे लेने वाले ससार मे बहुत से देव हे इसलिए वे दुर्गुण आपके पास स्वप्न मे भी नही आये तो इसमे कौन अचम्भे वाली वात है।

## मूलपाठ

**उच्चैरशोकतरुसंश्रितमुन्मयूख-**
**माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम् ।**
**स्पष्टोल्लसत् किरणमस्ततमोवितानं**
**बिम्वं रवेरिव पयोधर-पार्श्ववर्ति ॥२८॥**

अन्वयार्थ–(उच्चैरशोकतरु-संश्रितम्) ऊँचे अशोक वृक्ष के नीचे स्थित तथा (उन्मयूखम्) जिसकी किरणें ऊपर को फैल रही हैं, ऐसा (भवत अमलम् रूपम्) आपका उज्ज्वल रूप (स्पष्टोल्लसत्किरणम्) जिसकी किरणे स्पष्ट रूप से शोभायमान हैं और (अस्त तमोवितानम्) जिसने अन्धकार-समूह को नष्ट कर दिया है, ऐसे (पयोधरपार्श्ववर्ति) मेघ के निकट विद्यमान (रवे विम्वम् इव) सूर्य के विम्व की तरह (नितान्तम्) अत्यन्त (आभाति) शोभित होता हे ॥२८॥

## पद्यानुवाद

*तरु अशोक तल किरण उदार, तुम तन शोभित है अविकार।*
*मेघ-निकट ज्यो तेज फुरत, दिनकर दिपै तिमिर निहनत॥*

## अर्थ–अभिप्राय

हे वीतराग प्रभो ! समवशरण मे ऊँचे अशोक वृक्ष के नीचे विराजमान, चमकती ओर ऊपर की ओर फैलती हुई किरणो वाला आपका निर्मल स्वरूप ऐसा भव्य प्रतीत होता है जैसा कि स्वरूप से चमकती हुई किरणो वाला एव अन्धकार क ममूह को नष्ट करने वाला सूर्य का विम्व सघन मेघो के समीप शोभित होता है। भगवान् ऋषभदेव का पीतवर्ण सूर्य बिम्व के सदृश है और अशोक वृक्ष मेघ के सदृश नीलवर्ण युक्त। अशोक वृक्ष के सान्निध्य से ऋषभदेव का स्वत तेजस्वी रूप और अधिक तेजस्वी दिखाई देने लगता है।

भगवान् के केवलज्ञान होने के पश्चात् समवशरण मे इन्द्र आठ प्रातिहार्यों की रचना करता है। जिसमे सवसे पहला प्रातिहार्य हे–अशोक वृक्ष। किसी विशेष महिमा का ज्ञान कराने वाले एक चिह्न को जिसका निर्माण इन्द्र करता है उसे प्रातिहार्य कहते हे। समवशरण मे अशोक वृक्ष तीर्थंकर विशेष की अपेक्षा से उनके शरीर की अवगाहना के अनुपात से वारह गुणा ऊँचा होता है। अशोक वृक्ष के नीचे वेठने से आकुलता दूर होती हे ओर शांति प्राप्त होती है। आजकल भी अशोक वृक्ष की छाल ओपधियो मे काम आती हे।

## मूलपाठ

**सिंहासने मणिमयूखशिखाविचित्रे**
**विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम् ।**
**विम्वं वियद्विलसदंशुलता-वितानं**
**तुङ्गोदयाद्रि-शिरसीव सहस्ररश्मेः ॥२९॥**

अन्वयार्थ–(मणिमयूखशिखाविचित्रे) रत्नो की किरणो के अग्रभाग से चित्र विचित्र (सिंहासन) सिंहासन पर (तव) आपका (कनकावदातम्) सोने की तरह उज्ज्वल (वपु ) शरीर (तुगोदयाद्रिशिरसि) ऊँचे उदयाचल के शिखर पर (वियद् विलसदंशुलता वितानम्) आकाश मे जिसकी किरण-रूपी लताओ का समूह [illegible] (सहस्ररश्मे ) सूर्य के (विम्बम् इव) मण्डल की तरह [illegible] हो रहा है ॥२०॥

## पद्यानुवाद

*सिहासन मणि किरण विचित्र, तापर कचन वरण पवित्र।*
*तुम तन शोभित किरण विथार, ज्यो उदयाचल रवि तमहार॥*

## अर्थ–अभिप्राय

हे भगवन् ! जिस प्रकार ऊँचे उदयाचल पर्वत के शिखर पर आकाश मे पकाशमान किरण रूप लताआ के विस्तार से युक्त मूर्य का विम्व शोभा को प्राप्त होता है उसी प्रकार जडे हुए वहुमूल्य रत्नो की किरण पभा से शोभित ऊँचे सिहासन पर आपका स्वर्ण के समान देदीप्यमान स्वच्छ शरीर शोभा को प्राप्त हो रहा है।

सिहासन का अर्थ है उत्कृष्ट आसन। सिहासन की शोभा उस पर वेठने वाले से होती हे न कि सिहासन पर वेठने वाले की। ससार मे साधारण मनुष्य की वाह्य विभूति को देखकर हम उसके पुण्य का या पद का अनुमान लगाते हे, परन्तु जहाँ साक्षात तीर्थंकर भगवान् विराजमान हो उनके पुण्य की पराकाष्ठा का, उनके परम पद का भान भी हमे वाहरी विभूतियो से मिलता है। भगवान् समवशरण मे रत्नजडित सिहासन पर चार अगुल अधर अन्तरिक्ष मे विराजमान होते हैं। वह सिहासन भी उनकी विभूतियो का एक प्रतीक है। रत्न जडित सिहासन तो ददीप्यमान है ही, परन्तु भगवान् के परम औदारिक शरीर के विराजने से और भी अधिक देदीप्यमान हो जाता हे।

सिहासन की तुलना उदयाचल पर्वत से तथा भगवान् की उपमा तेजस्वी सूर्य से की हे। जिसके उदय होने पर अधेरा दूर हो जाता हे। उसी प्रकार भगवान् के केवलज्ञान प्रकट होने पर समवशरण मे आने वाले प्राणियो का मिथ्यात्व और मोहान्धकार रूपी अँधेरा दूर हो जाता हे। भगवान का सिहासन कमल के आ.ार का होता है। उस सिहासन पर भगवान् चार अगुल अधर अन्तरिक्ष मे विराजमान होते हें।

## मूलपाठ

कुन्दावदात-चलचामर-चारुशोभं
विभ्राजते तव वपुः कलधौतकान्तम् ।
उद्यच्छशाङ्क-शुचिनिर्झर-वारिधार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥

अन्वयार्थ–(कुन्दावदातचलचामरचारुशोभम्) कुन्द के फूल के समान स्वच्छ श्वेत चचल चामरो के द्वारा जिसकी शोभा सुन्दर है, ऐसा (तव) आपका (कलधौतकान्तम्) सोने के समान कमनीय (वपु·) शरीर (उद्यच्छशाकशुचि-निर्झर-वारिधारम्) जिस पर चन्द्रमा के समान निर्मल झरने के जल की धारा उछल–वह रही है, उस (सुरगिरे· शातकौम्भम् उच्चैस्तटम् इव) मेरुपर्वत के सोने के बने हुए ऊँचे तट की भाँति (विभ्राजते) शोभायमान होता है ॥३०॥

## पद्यानुवाद

*कुन्द पुहुप सित-चमर ढुरत, कनक-वरन तुम तन शोभत।*
*ज्यो सुमेरु तट निर्मल काति, झरना झरै नीर उमगाति॥*

## अर्थ–अभिप्राय

जैसे उदित होते हुए चन्द्रमा के समान झरनो की निर्मल जलधाराओ से सुमेरु का सुवर्णमयी ऊँचा शिखर शोभा पाता है वैसे ही देवताओ के द्वारा दोनो ओर ढुरने वाले कुन्द पुष्प के सदृश श्वेत चँवरो की सुन्दर शोभा से युक्त आपका स्वर्ण कान्तिवाला दिव्य देह भी अत्यन्त सुन्दर शोभा को प्राप्त हो रहा है। सुवर्णमय सुमेरु पर्वत के दोनो तरफ मानो निर्मल जल वाले दो झरने झरते हो इस प्रकार से भगवान् के सुवर्ण सदृश शरीर पर दो उज्ज्वल चवर ढुर रहे हैं।

भगवान् के सुन्दर शरीर का वर्णन सोने के समान सुमेरु पर्वत से और सफेद चवरो की तुलना उगते हुए चन्द्रमा के समान उज्ज्वल गिरते हुए जल के झरने अर्थात् जलधारा से की गई है। इस मोहक दृश्य को देखकर जगत् के प्राणी का मन तो प्रफुल्लित होता ही है, ज्ञानी पुरुष को यह भी संकेत मिलता है कि जो प्रभु के चरणो मे गिरेंगे, उनकी शरण लेगे वह नियम से ऊपर उठेगे ही जेसे यह ढुलते हुए चवर। इस प्रकार समवशरण (विशेष धर्म सभा जिसमे प्रभु की दिव्यध्वनि खिरती हे) मे यक्षेन्द्रो द्वारा कुन्द पुष्प के समान सफेद चौसठ चवर जब भगवान् के तपे हुए सोने के समान शरीर पर ढुरते हे तव आपके शरीर की कान्ति और भी वढ़ जाती हे ओर ऐसा प्रतीत होता हे जेसे सुमेरु पर्वत के दोनो ऊँचे किनारो से चन्द्रमा के समान उज्ज्वल जल के झरने झरते हो।

## मूलपाठ

छत्रत्रयं तव विभाति शशाङ्ककान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगितभानुकर-प्रतापम् ।
मुक्ताफल-प्रकरजाल-विवृद्धशोभं,
प्रख्यापयत् त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥३१॥

अन्वयार्थ-(शशाककान्तम्) चन्द्रमा के समान सुन्दर (स्थगित-भानुकर-प्रतापम्) सूर्य की किरणो के सन्ताप को रोकने वाले तथा (मुक्ताफलप्रकरजाल-विवृद्धशोभम्) मोतियो के समूह की जाली-झालर से बढ़ती हुई शोभा को धारण करने वाले (तव उच्चै स्थितम्) आपके ऊपर स्थित (छत्र-त्रयम्) तीन छत्र (त्रिजगत ) तीनो लोक के (परमेश्वरत्वम्) स्वामित्व को (प्रख्यापयत्) प्रगट करते हुए से (विभाति) प्रतीत होते हैं ॥३१॥

## पद्यानुवाद

*ऊँचे रहैं सूर-दुति लोप, तीन छत्र तुम दिपे अगोप।*
*तीन लोक की प्रभुता कहैं, मोती झालर सो छवि लहैं॥*

## अर्थ–अभिप्राय

हे भगवान् ! आपके मस्तक के ऊपर जो तीन छत्र हैं वे तीन जगत् के स्वामित्व को प्रकट करते हैं। वे छत्र चन्द्रमा के समान ऊपर उठे हुए रमणीय श्वेत वर्ण वाले हैं, रोक दिया है जिन्होने सूर्य की किरणो के आतप (प्रताप) को और मोतियो की झालरो के समूह से, ऐसे वे बड़े ही शोभायमान हो रहे हैं।

ससार मे भी पुण्यशाली सम्राटो के सिर पर एक छत्र होता है जो उनके विशेष पुण्य के वेभव को प्रकट करता हे परन्तु यहाँ परम-वीतरागी, सर्वज्ञ जिनेन्द्र भगवान् के सिर पर तीन छत्र, एक के ऊपर एक जिनमे मणिमुक्ताओ की झालर लगी हुई हैं, जो सूर्य के तेज प्रकाश को (गर्मी को) रोके हुए हैं, यह सूचित करते हैं कि आप तीन लोक–ऊर्ध्व, मध्य और अधो (पाताल)–के स्वामी हैं। ऐसा पुण्य हरेक प्राणी का नही होता परन्तु यह तीर्थंकर भगवान् के पुण्य के वाह्य वैभव का सूचक है। साधारण मनुष्य वर्षा और गर्मी से बचने के लिए छतरी का उपयोग करता है। उसे हाथ मे लेकर चलना पडता हे। राजा, महाराजा, सम्राट के वैभव को बताने के लिए एक छत्र को भी सेवक हाथ मे लेकर चलता है परन्तु भगवान् के सिर पर यह तीन छत्र अन्तरिक्ष मे अपने आप चलते है। यह उनके पुण्य का वेभव तो है ही, साथ ही साथ यह भी सूचित करता है कि भगवान् तीन लोको के सम्राट है।

## मूलपाठ

**गम्भीरताररवपूरित-दिग्विभाग-**
**स्त्रैलोक्यलोक-शुभसङ्गम-भूतिदक्षः ।**
**सद्धर्मराजजयघोषण-घोषकः सन्,**
**खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥३२॥**

अन्वयार्थ–(गम्भीरताररवपूरित-दिग्विभाग ) गम्भीर और उच्च शब्द से दिशाओ के विभाग को पूर्ण करने वाली (त्रैलोक्यलोकशुभसगम-भूतिदक्ष ) तीन लोक के जीवो को शुभ सम्पत्ति प्राप्त कराने मे निपुण-समर्थ और (सद्धर्मराज-जयघोपण-घोषक.) सद्धर्म के अधिपति की जय घोपणा करने वाली (दुन्दुभि ) दुन्दुभि (ते) आपके (यशस ) यश का (प्रवादी सन्) कथन करती हुई (खे) आकाश मे (ध्वनति) शब्द कर रही है ॥३२॥

## पद्यानुवाद

*दुन्दुभि शब्द गहर गम्भीर, चहुं दिश होय तुम्हारे धीर।*
*त्रिभुवन-जन शिव सगम करै, मानू जय जय रव उच्चरै॥*

## अर्थ–अभिप्राय

आकाश मे देवता दुन्दुभी वजाते है तव उसके शब्द, सुन्दर, गम्भीर, उच्चस्वर से दसो दिशाएँ गूँज जाती है, उससे ऐसा अनुभूत होता है कि वह तीन लोको के प्राणियो को कल्याण प्राप्ति के लिए आह्वान कर रहा है और भगवान् ही सच्चे धर्म का निरूपण करने वाले हे। इस प्रकार से भगवान् के यश को वह ससार मे विस्तारता हुआ वजता रहता है।

जव भगवान् ने मोह राजा पर विजय प्राप्त कर ली तभी ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी और अन्तराय कर्मो ने भगवान् का साथ छोड दिया और वह पूर्ण रूप से वीतराग, सर्वज्ञ, अनन्त चतुष्टय के धारी वन गए। और अव इस ससार को छोड़कर शाश्वत सुख के साम्राज्य का स्थान–मोक्ष मे जाने की तेयारी मे है तभी महावली मोह राजा ने वहाँ कैसा व्यग कसा हैं। राजा मोह कहता है कि मेरा तीन लोको मे राज्य स्थापित है। जो भी प्राणी नरक निगोद से लगाकर सर्वार्थसिद्ध तक जहाँ भी जाना चाहे भेजता हूँ। वहॉ की सुविधानुसार सब प्रकार की सेवा करता हूँ। मेरे नोकर-चाकर उनकी मदद करते है। यदि कोई मेरा कहा न माने तो मे उसे ससार से निकालकर वाहर कर देता हूँ। उनकी सारी विभूति छीन ली जाएगी, न वहॉ शरीर होगा, न शरीर सम्वन्धी भोग की सामग्री। उनको ऐसे स्थान पर भेज दिया जाएगा जहॉ वह शाश्वत वने रहेगे। कोई भ्रम न रहे अतएव गन्धर्वों के द्वारा यह घोपणा करवा रहा हूँ कि "जो भी प्राणी भविष्य मे मेरी अवज्ञा करेगा उसको भी यही सजा दी जावेगी।"

## मूलपाठ

मन्दार-सुन्दर-नमेरु-सुपारिजात-
सन्तानकादिकुसुमोत्करवृष्टिरुद्धा ।

**गन्धोदबिन्दु-शुभमन्द-मरुत्प्रपाता,**

**दिव्या दिवः पतित ते वचसां ततिर्वा ॥३३॥**

अन्वयार्थ–(गन्धोदविन्दु-शुभ-मन्दमरुत्प्रपाता) सुगन्धित जल-विन्दुओं ओर उत्तर मन्द-मन्द वहती हुई हवा के साथ गिरने वाली (उद्धा) श्रेष्ठ और (दिव्य) मनोहर (मन्दार-सुन्दर-नमेरु-सुपारिजात-सन्तानकादि कुसुमोत्करवृष्टि ) मन्दार, सुन्दर, नमेरु, पारिजात, सन्तानक आदि कल्पतरुओ के पुष्पसमूह की वृष्टि (ते) आपके (वचसाम्) वचनो की (तति वा) पक्ति की तरह (दिव पतति) आकाश से गिरती है ॥३३॥

## पद्यानुवाद

*मन्द पवन गन्धोदक इष्ट, विविध कल्पतरु पुहुप सुवृष्टि।*
*देव करें विकसित दल सार, मानो द्विज पकति अवतार॥*

## अर्थ–अभिप्राय

हे नाथ ! आपके समवशरण अर्थात् धर्मसभा विशेष मे गन्धोदक की वूदो से पवित्र मन्द पवन के झोको से वरसने वाली देव-कृत पुष्प वर्षा, वडी ही सुन्दर मालूम होती है। उसमे मन्दार, सुन्दर, नमेरु, पारिजात और सन्तानक आदि कल्पवृक्षो के मनोहर सुगन्धित पुष्प निरन्तर झडते रहते है। ये पुष्प जव आकाश से वरसते है तो ऐसा मालूम होता है, मानो आपके वचनो की दिव्य पंक्तियाँ ही वरस रही हो।

समवशरण मे जो कल्पवृक्षो के फूलो की वर्पा होती है उनका मुख ऊपर की ओर होता है। यह विशेषता हे। भगवान् की दिव्यध्वनि की तुलना आचार्यश्री ने कल्पवृक्षो के फूलो से की हे। समवशरण वारह भागो मे विभक्त होता है जहाँ गणधर, साधु, साध्वी, देव, देवागनाएँ, मनुष्य तथा पशु-पक्षी सभी अपने-अपने स्थान पर वेठकर भगवान् का उपदेश सुनते हैं। भगवान् की वाणी जो धारा प्रवाह खिरती हे तव ऐसा प्रतीत होता हे कि पक्षी भी पक्तिवद्ध आपकी वाणी को सुनने को आते हें। भगवान् के वाह्य पुण्य की विशेपता तो देवगण द्वारा समवशरण की सरचना, उसकी सुन्दरता आदि तो इन आठ प्रातिहार्यो से मालूम पडती है। इसके साथ-साथ सन्त महात्माओ-मुमुक्षुओ का मन भगवान् की वाणी को सुनकर आनन्द विभोर हो जाता हे ओर उस वाणी को अपने हृदय-पटल पर उतारकर, उस पर श्रद्धा करके, आचरण के साथ अपना जीवन सफल वनाते हैं।

## मूलपाठ

**शुम्भत्प्रभावलय-भूरिविभा विभोस्ते,**
**लोकत्रय-द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती ।**
**प्रोद्यद्-दिवाकर-निरन्तर भूरिसंख्या,**
**दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम-सौम्याम् ॥३४॥**

अन्वयार्थ–(लोकत्रय-द्युतिमताम्) तीनो लोको के कान्तिमान पदार्थों की (द्युतिम्) कान्ति को भी (आक्षिपन्ती) तिरस्कृत करती हुई (ते विभो ) आप–प्रभु की (शुम्भत्प्रभावलयभूरिविभा) शुभ्र-भामण्डल की विशाल प्रभा (दीप्त्या) अपनी दीप्ति से (प्रोद्यद् दिवाकरनिरतर-भूरिसख्या) उदय होते हुए अन्तर रहित अनेक सूर्यों जेसी कान्ति से उपलक्षित होकर (अपि) भी (सौम-सौम्याम्) चन्द्रमा की सौम्य-शीतल (निशाम् अपि) रात्रि को भी (जयति) जीत रही है ॥३४॥

## पद्यानुवाद

*तुम तन भामण्डल जिनचद, सव दुतिवन्त करत है मद।*
*कोटि शख रवितेज छिपाय, शशि निर्मल निशि करै अछाय॥*

## अर्थ–अभिप्राय

हे भगवन्त । आपके भामण्डल की ज्योतिर्मयी प्रभा तीन जगत् के सभी ज्योति वाले पदार्थों की ज्योति को लज्जित कर देती है और एक साथ उदित हुए सहस्रो सूर्यों के प्रकाश से अधिक प्रकाश वाली होती हुई भी वह भामण्डल की प्रभा, पूर्णमासी की शीतल चन्द्रिका को भी पराजित कर देती है। अर्थात् भामण्डल की प्रभा सहस्रो सूर्यों की प्रभा से अधिक होने पर भी किसी को सन्ताप नहीं पहुँचाती हे, प्रत्युत चन्द्रमा की चॉदनी से भी अधिक शान्ति प्रदान करती हे।

भगवान जहॉ विराजमान होते हैं वहॉ दिन-रात्रि का विचार नही होता, वहॉ चन्द्रमा-सूर्य की आवश्यकता नही होती, वह स्थान सदा प्रकाशवान रहता है। जव सन्त-महात्माओ के मुख पर एक अनुपम तेज झलकता है तव तीर्थंकर भगवान् के परम औदारिक दिव्य देह से निकलने वाली ज्योति के क्या कहने? भगवान् के शरीर से निकलने वाली ज्योति जो गोलाकार होती है उसे ही भामण्डल कहते हैं। आगम म उल्लिखित है कि भव्य जीवो को उस भामण्डल मे अपने तीन अतीत, एक वर्तमान और तीन भावी– कुल सात भवो का ज्ञान हो जाता हे। यदि आगामी भवो की सङ्ख्या कम हो तो कम ही भव दिखाई देते ह। भगवान् की आत्मा जव

कर्म-मल से रहित हो जाती है, पूर्ण सर्वज्ञता प्रकट हो जाती है, सकल परमात्मा बन जाते हैं तभी उनकी देह भी इतनी पवित्र और तेजस्वी हो जाती है कि उनके शरीर से प्रकाश ही प्रकाश निसृत होता रहता है। तेरहवे गुणस्थान पर इस अवस्था का प्रादुर्भाव होता है। भगवान् के शरीर से निकला हुआ तेज, जो करोड़ो सूर्यों के तेज से भी तेजस्वी है फिर भी वह चन्द्रमा के प्रकाश जेसी शीतलता प्रदान करने वाला है, आतापकारी नही है। उसी प्रकार भगवान् की मधुर वाणी ससार की पीड़ा को हरण करने वाली तथा सुख-शान्ति को प्रदान करने वाली है।

## मूलपाठ

**स्वर्गापवर्गगममार्ग-विमार्गणेष्टः**
**सद्धर्मतत्त्वकथनैक-पटुस्त्रिलोक्याः ।**
**दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्व-**
**भाषास्वभाव-परिणामगुणैः प्रयोज्यः ॥३५॥**

अन्वयार्थ-(ते) आपकी (दिव्यध्वनि ) दिव्यध्वनि (स्वर्गापवर्गममार्ग-विमार्गणेष्ट ) स्वर्ग और मोक्ष को जाने वाले मार्ग को खोजने मे इष्ट (त्रिलोक्या.) तीन लोक के जीवो को (सद्धर्मतत्त्च-कथनैक-पटु ) सम्यक् धर्मतत्त्व के कथन करने मे अत्यन्त प्रवीण और (विशदार्थ-सर्व-भाषा-स्वभाव-परिणामगुणै प्रयोज्य·) स्पष्ट अर्थ वाली समस्त भाषाओ मे परिवर्तित होने वाले स्वाभाविक गुणो से प्रयुक्त-सहित (भवति) होती है ॥३५॥

## पद्यानुवाद

*स्वर्ग मोक्ष मारग सकेत, परम धरम उपदेशन हेत।*
*दिव्य वचन तुम खिरै अगाध, सब भाषा-गर्भित हितसाध॥*

## अर्थ—अभिप्राय

हे भगवन् ! आपकी दिव्यध्वनि विलक्षण गुण से युक्त है, स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग बताने वाली, तीन लोक के प्राणियों को सत्यधर्म का रहस्य समझाने में कुशल, स्पष्ट अर्थात् विशद् अर्थ वाली है ओर संसार की सभी भाषाओं में परिणत होने के कारण अति विलक्षण हे।

भगवान् के नगाडे की आवाज को सुनकर जब देव, मनुष्य और तिर्यंच गति के जीव अपने कल्याणार्थ अपने-अपने स्थान पर समवशरण मे बैठे होते हैं तब ओंकार रूप निरक्षरी वाणी खिरती है। जो सब भाषामय हो जाती है और प्राणी

चाहे किसी भी भाषा का जानने वाला हो वह अपनी-अपनी भाषा मे समझ लेता है। इतना ही नही पशु-पक्षी भी अपनी-अपनी भाषा मे समक्ष लेते है। भगवान् की वाणी सव भाषामयी होने मे उनका विशेष पुण्य ही निमित्त कारण है। आगम मे उल्लिखित है कि भगवान् की दिव्यध्वनि एक योजन अर्थात् चार कोस तक सुनाई पडती है। दिव्यध्वनि अर्थात् भगवान् की वाणी भव्य जीवो के पुण्य से दिन मे चार वार–प्रात , दोपहर, सायकाल और अर्धरात्रि को विना इच्छा के खिरा करती है। समवशरण मे हजारो लाखो जीव अपने-अपने विचार, जिज्ञासाएँ, शकाएँ सजोए होते है। भव्य जीवो के पुण्य के उदय से जो वाणी सूक्ष्म सकेत रूप मे खिरती है उसमे सव प्राणियो की जिज्ञासा का समाधान हो जाता है। उस समय तो प्रत्येक प्राणी अपनी-अपनी योग्यता अनुसार उस वाणी को समझ लेता है। परन्तु गणधर देव उस वाणी को विस्तार से समझ कर जनता-जनार्दन के हित भिन्न-भिन्न विषयो पर अलग-अलग उपदेश देते है जिसे द्वादशाग वाणी कहते है।

## मूलपाठ

**उन्निद्रहेम-नवपङ्कज-पुञ्जकान्ति,**
**पर्युल्लसन्-नख-मयूखशिखाभिरामौ।**
**पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः,**
**पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६॥**

अन्वयार्थ–(जिनेन्द्र) हे जिनेन्द्र ! (उन्निद्रहेमनव-पकजपुञ्जकान्ति) खिले हुए सोने के नवीन कमल समूह के समान कान्तिवाले तथा (पर्युल्लसन्नखमयूख-शिखाभिरामौ) चारो ओर से शोभायमान नखो की किरणो के अग्रभाग से सुन्दर (तव) आपके (पादौ) दोनो चरण (यत्र) जहाँ (पदानि) कदम (धत्त ) रखते है, (तत्र) वहाँ (विबुधा ) देव (पद्मानि) कमल (परिकल्पयन्ति) रच देते है ॥३६॥

## पद्यानुवाद

*विकसित सुवरन कमल-दुति, नख-दुति मिलि चमकाहि।*
*तुम पद पदवी जह धर, तह सुर कमल रचाहि॥*

## अर्थ–अभिप्राय

हे जिनेन्द्र ! विकसित नूतन स्वर्ण-कमलो के समूह के समान दिव्य कान्ति वाले तथा सब ओर फैलने वाली नख-किरणो की ज्योति से अतीव सुन्दर लगने वाले आपके पवित्र चरण जहाँ-जहाँ टिकते है वहाँ-वहाँ भक्त देवता पहले ही स्वर्ण कमलो की रचना कर देते है।

भगवान् के विहार के समय देवगण पन्द्रह-पन्द्रह कल्पित स्वर्ण-कमलो की रचना पन्द्रह पक्तियो मे–दो सो पच्चीस कमलो की रचना करते है। भगवान् का चरण मध्य के कमल पर होता है। जेसे-जसे भगवान् अपना कदम आगे बढ़ाते जाते हैं पीछे के कमलो की पक्तियाँ सिमट कर आगे-आगे आ जाती है। इस प्रकार भगवान् के प्रत्येक चरण के चारो ओर दो सो पच्चीस कमल होते है। जिस प्रकार भगवान् सिहासन पर भी चार अगुल अधर अतरिक्ष मे विराजमान होते है उसी प्रकार विहार के समय भी कमलो से चार अगुल अधर रहते है। तीर्थंकर भगवान् केवली सर्वज्ञ होने पर कभी भी जमीन पर नही चलते।

## मूलपाठ

**इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !**
**धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य ।**
**यादृक् प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा**
**तादृक् कुतो ग्रह-गणस्य विकाशिनोऽपि ॥३७॥**

अन्वयार्थ–(जिनेन्द्र !) हे जिनेश्वरदेव ! (इत्थ) इस प्रकार (धर्मोपदेशनविधौ) धर्मोपदेश के कार्य मे (यथा) जेसी (तव) आपकी (विभूति ) विभूति–दिव्य वैभव प्राप्ति (अभूत) हुई थी, (तथा) वेसी (न परस्य) किसी दूसरे की नही हुई थी (प्रहतान्धकारा) अन्धकार को नष्ट करने वाली (यादृक्) जैसी (प्रभा) कान्ति (दिनकृत भवति) सूर्य की होती है (तादृक्) वेसी (ग्रहगणस्यविकाशिनोऽपि) प्रकाशमान ग्रह गण की भी (कुत ) कहॉ से हो सकती है? अर्थात् नही हो सकती॥३७॥

## पद्यानुवाद

*जैसी महिमा तुम विषै, और धरे नहि कोय।*
*सूरज मे जो जोति है, नहि तारागण होय॥*

## अर्थ–अभिप्राय

अहो वीतराग देव ! धर्मोपदेश देते समय जैसी आपकी दिव्य-विभूति हुआ करती थी वेसी अन्य रागी देवो की तो कभी नही हुई। आपकी ओर दूसरे देवो की तुलना ही क्या? अन्धकार को नाश करने वाली जैसी प्रचण्ड प्रभा सूर्य मे होती है वेसी प्रभा आकाश मे चमकने वाले दूसरे ग्रह नक्षत्रो मे कहॉ होती है?

जब तीर्थंकर भगवान् के पूर्ण-ज्ञान दशा प्रकट होती है अथवा केवलज्ञान की ज्योति प्रकट हो जाती है तभी सर्वज्ञ भगवान् की पुण्य की भी पूर्ण पराकाष्ठा

प्रकट हो जाती है, वैसा पुण्य किसी अन्य जीव का नही होता। जैसी विभूति आप मे है वेसी विभूति अन्य देवी-देवता मे नही प्राप्त होती। जैसी धर्म के स्वरूप की देशना आपके द्वारा होती है वैसी किसी अन्य धर्मोपदेशक की नहीं होती।

## मूलपाठ

**श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल-**
**मत्तभ्रमद्-भ्रमरनाद-विवृद्धकोपम् ।**
**ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं**
**दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम् ॥३८॥**

अन्वयार्थ–(श्च्योतन्-मदाविल-विलोलकपोलमूल-मत्तभ्रमद् भ्रमरनाद-विवृद्धकोपम्) झरते हुए मदजल से मलिन और चचल गालो के मूल भाग मे मत्त होकर मडराते हुए भौरो के गुजार से जिनका कोप वढ़ गया हे, ऐसे (ऐरावताभम्) ऐरावत हाथी की तरह (उद्धतम्) उद्दण्ड (आपतन्तम्) सामने से आते हुए (इभम्) हाथी को (दृष्ट्वा) देख कर भी (भवदाश्रितानाम्) आपके आश्रित मनुष्यो को (भय) भय (नो भवति) नहीं होता ॥३८॥

## पद्यानुवाद

*मद-अवलिप्त-कपोल-मूल अलि कुल झंकारै,*
*तिन सुन शब्द प्रचण्ड क्रोध उद्धत अति धारै।*
*काल वरन विकराल कालवत सन्मुख आवै,*
*ऐरावत सी प्रवल सकल जन भय उपजावे॥*
*देखि गयन्द न भय करे, तुम पद महिमा लीन।*
*विपति-रहित सपति सहित, वरतै भक्त अदीन॥*

## अर्थ–अभिप्राय

युवावस्था में वहने वाले मद से मलिन एव चचल गण्डस्थल पर मडराने वाले मदोन्मत्त भौंरो की गुजार से अत्यन्त क्रुद्ध हुआ इन्द्र के ऐरावत हाथी के समान महाविशाल मदमत्त हाथी भी यदि आक्रमण करे तो भी आपके आश्रय में रहने वाले भक्त जनो को कुछ भी भय नहीं होता हे अर्थात् वे निर्भय वने रहते है आपका भक्त गजभय से विमुक्त रहता है।

भय सात प्रकार का होता है और सम्यक् दृष्टि को यह सातो ही भय नहीं होते। उसकी आत्मा शक्तिशाली हो जाती है। उसमे शान्ति का स्रोत वहने लगता है।

इसमे कोई अचम्भे वाली बात नही है कि आपके ऐसे भक्त के आगे वह हाथी भी अपने क्रोध को छोड देवे। लौकिक कथाएँ प्रचलित है कि ध्यानस्थ मुनियो के आगे क्रूर पशु भी झुक जाते है। चन्दन के वृक्ष पर लिपटे सर्प मोर की आवाज सुनकर भयभीत हो जाते है। यह सही है कि किसी भी कार्य की सफलता पूर्व और वर्तमान के कर्मों के योग पर आधारित है फिर भी पूर्वभवो के कर्मों का ज्ञान न होने से भगवान् की भक्ति की महिमा निराली है। भगवान् की भक्ति से असाता का साता मे सक्रमण एव अधिक स्थिति वाले कर्मों का कम स्थिति मे अपकर्षण हो जाता है।

## मूलपाठ

**भिन्नेभ-कुम्भ- गलदुज्ज्वल-शोणिताक्त-**
**मुक्ताफल प्रकर-भूषित-भूमिभागः।**
**बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि**
**नाक्रामति क्रमयुगाचलसंश्रितं ते ॥३९॥**

अन्वयार्थ–(भिन्नेभकुम्भगलदुज्ज्वलशोणिताक्त-मुक्ता-फल-प्रकर-भूपित-भूमिभाग ) फाडे हुए हाथी के गण्डस्थल से टपकते हुए उज्ज्वल तथा रक्त से सने हुए मोतियो के समूह से जिसने पृथ्वी के प्रदेश को विभूषित कर दिया है, तथा (बद्धक्रम ) जो छलाँग मारने के लिए उद्यत है, ऐसा (हरिणाधिप अपि) सिह भी (क्रमगतम्) अपने पैरो के बीच आए हुए (ते) आपके (क्रमयुगाचल-संश्रितम्) चरण युगल रूप पर्वत का आश्रय लेने वाले पुरुष पर (न आक्रामति) आक्रमण नही करता ॥३९॥

## पद्यानुवाद

*अति मदमत्त गयन्द कुम्भथल नखन विदारै,*
*मोती रक्त समेत डारि भूतल सिगारै।*
*वाकी दाढ विशाल वदन मे रसना लोलै,*
*भीम भयानक रूप देखि जन थरहर डोलै॥*
*ऐसे मृगपति पद तलै, जो नर आयो होय।*
*शरण गहे तुम चरण की, बाधा करै न सोय॥*

## अर्थ–अभिप्राय

जिसने दीर्घ भीमकाय हाथियो के कुम्भस्थलो को विदारण [illegible]
हुए उज्ज्वल मोतियो के ढेर से भूमि-भाग को अलकृत किया है, [illegible]

भी आपके चरण-युगल रूपी पर्वत का आश्रय लेने वाले भक्त के सामने ऐसा वन जाता हे, मानो उसके पैर वाँध दिए गये हो, वह उस पर आक्रमण नही करता है अर्थात् आपका भक्त सिह-भय से विमुक्त रहता है।

जिस भयानक, विकराल वर्वर शेर ने हाथी के मस्तक को विदीर्ण कर डाला हो, ऐसे शेर के पजे मे भी कोई मनुष्य आ जाये और वह मनुष्य आपकी शरण मे हो तो उसका वह भयकर शेर भी कोई अनिष्ट नही कर सकता। तात्पर्य यह है कि जिन्होने भगवान् आदिनाथ की शरण ले ली, उन पर किसी प्रकार की विपदा नही आती। मिथ्यात्व और अज्ञानरूपी शेर ने इस जीव को चारो गतियो के भ्रमण मे जकड़ रखा है। ऐसा प्राणी यदि आपके शुद्ध स्वरूप का शरण लेवे तो मोहान्धकाररूपी शेर जव उसका कुछ नही विगाड सकता तव यह तिर्यञ्च पशु उसे कैसे हानि पहुँचा सकता है? अर्थात् आपके भक्तो पर कोई विपदा-आपदा नही आ सकती।

## मूलपाठ

**कल्पान्तकाल-पवनोद्धत-वह्निकल्पं**
**दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिङ्गम् ।**
**विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं**
**त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषम् ॥४०॥**

अन्वयार्थ-(त्वन्नामकीर्तनजल) आपके नाम का कीर्तन-गुणगान रूपी जल (कल्पान्त काल-पवनोद्धत-वह्निकल्पम्) प्रलयकालीन प्रचण्ड पवन से उद्धत अग्नि के समान (ज्वलितम्) प्रज्वलित (उज्ज्वलम्) धधकती हुई उज्ज्वल (उत्स्फुलिगम्) जिसमे से चिनगारियाँ उछल रही हे ऐसी (विश्व जिघत्सुम् इव) ससार को निगलना चाहती हुई-सी (सम्मुखम् आपतन्तम्) सामने से आती हुई (दावानलम्) वन की आग को (अशेप) पूर्ण रूप से (शमयति) वुझा देता है ॥४०॥

## पद्यानुवाद

*प्रलय पवन कर उठी आग जो तास पटतर,*
*वमं फुलिग शिखा-उतङ्ग परजल निरतर।*
*जगत् समस्त निगल्ल भस्म करहेगी मानो,*
*तडतडात दव अनल जोर चहुँ दिशा उठानो॥*
*सो इक छिन मे उपशमे, नाम नीर तव लेत।*
*होय सरोवर परिणमे, विकसित कमल समेत॥*

## अर्थ–अभिप्राय

प्रलयकाल की महावायु के समान, प्रचण्ड पवन से प्रज्वलित, ... श में उड रही हैं चिनगारियाँ जिसमे तथा समग्र विश्व को भस्म करने ... उद्यत ऐसा प्रचण्ड दावानल भी आपके नाम रूपी जल के प्रभाव से ... हो जाता है। अर्थात् आपका भक्त अग्नि-भय से विमुक्त रहता है।

भगवान् के नाम का माहात्म्य अनुपम है। जिसके स्मरण से न केवल ... र शान्त हो जाती है, शीतल हो जाती है बल्कि आत्मा के अन्दर ... भी शान्त हो जाती है। बस जरूरत है भगवान् के नाम के स्मरण की, ... निर्दिष्ट पथ को हृदय मे धारण करने की और उस पर आचरण करने की। दृष्टि से सती सीता के अग्नि कुण्ड को ले तो विदित होता है कि उस प्रचण्ड ...न मे जब सीता ने नि शक होकर प्रभु के नाम का स्मरण करते हुए ... ... तो वहाँ एक जलाशय वन गया जिसमे कमल खिल रहे थे।

## मूलपाठ

**रक्तेक्षणं समदकोकिल-कण्ठनीलं**

**क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम् ।**

**आक्रामति क्रमयुगेन निरस्तशङ्क-**

**स्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः॥४१॥**

अन्वयार्थ–(यस्य) जिस (पुस ) पुरुष के (हृदि) हृदय मे (त्वन्नामनागदमनी) आपके नाम-रूपी नागदमनी औषधि मौजूद है, (स·) वह पुरुष (रक्तेक्षणम्) लाल-लाल आँखो वाले (समदकोकिल-कण्ठनीलम्) मदयुक्त कोयल के कण्ठ की तरह काले (क्रोधोद्धतम्) क्रोध से प्रचण्ड ओर (उत्फणम्) ऊपर को फण उठाए हुए (आपतन्तम्) सामने आने वाले (फणिनम्) साप को (निरस्तशक ) नि शक होकर (क्रमयुगेन) दोनो पेरो से (आक्रामति) आक्रान्त कर जाता है ॥४१॥

## पद्यानुवाद

*कोकिल-कठ-समान श्याम तन क्रोध जलता,*

*रक्तनयन फुकार मार विषकण उगलता।*

*फण को ऊँचो करै वेग ही सन्मुख धाया,*

*तव जन होय निशक देखि फणिपति को आया॥*

*जो चापे निज पग तलैं, व्यापै विष न लगार।*

*नाग-दमनि तुम नाम की, है जिनके आधार॥*

## अर्थ–अभिप्राय

जिसके हृदय मे आपके नाम रूप नागदमनी जडी हे, वह पुरुप लाल नेत्र वाले एव मत वाले कोकिल के कण्ठ के समान काले, क्रोध से फुकार करते और फन को ऊँचा उठाकर सामने झपटते–आते हुए भयकर सॉप को भी नि शक होकर लाघता हुआ चला जाता है अर्थात् आपका भक्त सर्प-भय से मुक्त रहता हे।

हे प्रभु ! कोयल के कठ समान वाला, क्रोध से जिसका शरीर जल रहा हो, ऑखे लाल हो, फुकार मारते हुए जिसके मुख से जहर के कण निकल रहे हो अर्थात् वहुत ही गुस्से मे हो यदि ऐसा सर्प भी अपने फण को ऊँचा उठाए, तेजी से सामने आ जाए तो हे भगवन् ! आपका भक्त ऐसे डरावने भयानक सर्प को अपनी ओर आता हुआ देखकर, निडर अर्थात भय रहित हो जाता है। जिस प्रकार नाग-दमनी वूटी से वडे-वडे जहरीले सर्प निस्तेज हो जाते हे उसी प्रकार श्रद्धा, भक्ति, पवित्रता से आपका नाम स्मरण करने वाले को सर्प का कोई भय नही रहता। लौकिक दृष्टि मे तो इन मत्रो या जडी वूटियो से यह विप उतर जाता ह लेकिन जिसने आपके उपदेश से अपने स्वरूप को जान लिया है उसके द्वारा भावपूर्वक आपके नाम का स्मरण किया गया हो उसका ससार का जन्म मरण रूपी विप भी उतर जाता हे। यानि वह ससार के आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाता ह।

### मूलपाठ

वल्गत्तुरङ्ग-गजगर्जित-भीमनाद-<br>
माजौ वलं वलवतामपि भूपतीनाम् ।<br>
उद्यद्दिवाकरमयूख-शिखापविद्धं<br>
त्वत् कीर्तनात् तम इवाशु भिदामुपैति ॥४२॥

अन्वयार्थ–(त्वत्कीर्तनात्) आपके गुणकीर्तन से (आजो) युद्ध क्षेत्र मे (वल्गत्-[illegible] गजगर्जित भीमनादम्) उछलते हुए घोडो आर हाथियो की गर्जना से जिसमे [illegible] हो रहा ह, ऐसी (वलवता भूपतीना अपि) शक्तिशाली तेजस्वी [illegible] की भी (वलम्) सेना (उद्यद्-दिवाकर- मयूख-शिखापविद्धम्) उगते हुए सूर्य की [illegible] के [illegible] मे छिन्न भिन्न हुए (तम इव) अन्धेरे की तरह (आशु) [illegible] उपैति) विनष्ट हो जाती ह, हार जाती हे ॥४२॥

## पद्यानुवाद

*जिस रनमाहि भयानक शब्द कर रहे तुरगम,*
*घन से गज गरजाहि मत्त मानो गिरि जगम।*
*अति कोलाहल माँहि वात जस नाहि सुनीजै,*
*राजन को परचण्ड देखि वल धीरज छीजे॥*
*नाथ तिहारे नाम तै, अघ छिनमाहि पलाय।*
*ज्यो दिनकर परकाशतें, अन्धकार विनशाय॥*

## अर्थ—अभिप्राय

जिस सेना मे घोडे हिनहिना रहे हो ओर हाथी चिघाड रहे हो, भयकर कोलाहल हो रहा हो ऐसी शत्रु राजाओ की सेना भी आपके नाम का उच्चारण करने से ऐसी छिन्नभिन्न हो जाती हे जेसे सूर्य के उदित होते ही उसकी किरणो से रात्रि का अधकार शीघ्र ही छिन्न-भिन्न हो जाता है अर्थात् आपके भक्त को शत्रु-सेना का भय नही रहता।

हे जिनदेव ! जिस प्रकार उगते हुए सूर्य की किरण समूह के सामने गहन अधकार भी नही टिकने पाता, उसी प्रकार सग्राम मे आपके गुणो का गान करने से चौकडी भरते हुए घोडो की हिनहिनाहट और हाथियो की भीपण चिघाड से भयकर युद्धरत वलशाली राजाओ की सेना भी देखते-देखते नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है। इस प्रकार जिसने एक अति शक्तिमान शुद्धात्मा-परमात्मा का सहारा लिया उसके सामने अनन्त निर्वल शक्तियाँ क्षण भर भी नही टिकती।

## मूलपाठ

**कुन्ताग्रभिन्नगज-शोणितवारिवाह-**
**वेगावतार-तरणातुरयोध-भीमे ।**
**युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षा-**
**स्त्वत्पाद-पङ्कजवनाश्रयिणो लभन्ते ॥४३॥**

अन्वयार्थ–(त्वत्पाद-पकज-वनाश्रयिण ) आपके चरण कमल रूपी वन का आश्रय लेने वाले पुरुष (कुन्ताग्र-भिन्नगज-शोणितवारिवाह-वेगावतार-तरणातुर-योधभीमे) भालो की नोक से फाड़े हुए हाथियो के रक्त रूपी जल-प्रवाह को वेग से उतरने और तैरने मे व्यग्र योद्धाओ से भयकर (युद्धे) युद्ध मे (विजितदुर्जय-जेयपक्षा·) दुर्जय शत्रुओ के पक्ष को जिन्होने जीत लिया, ऐसे दुर्दान्त होकर (जयम्) विजय (लभन्ते) पाते हैं ॥४३॥

## पद्यानुवाद

*मारे जहाँ गयन्द, कुम्भ हथियार विदारे,*
*उमगे रुधिर प्रवाह वेग जलसम विस्तारे।*
*होय तिरन असमर्थ महाजोधा वलपूरे,*
*तिस रन मे जिन तोर भक्त जे हैं नर सूरे॥*
*दुर्जनअरि कुल जीत के, जय पावै निकलक।*
*तुम पद पकज मन वसे, ते नर सदा निशक॥*

## अर्थ–अभिप्राय

हे जिनेश्वर ! आपके चरण कमलो की सेवा करने वाले भक्त जन दुर्जय शत्रु का मान मर्दन कर उस भयकर महयुद्ध मे विजयवैजयती फहराते है जिसमे भालों की नोको से विदीर्ण हुए हाथियो के रुधिर प्रवाह के वेग को वेग से पार करने के लिए योद्धागण अति आतुर रहते है। सच है, आत्मस्थ आत्माओ को शरीर से किंचित् भी मोह नही होता। अतएव वे जी-जान से लडकर शत्रु का मानमर्दन कर दे तो कौन वडी वात है।

यदि हम इस युद्ध को अपने अष्ट कर्मों से तुलना करे जिन्होने हमे ससार मे तरह-तरह की यातनाएँ दे रखी है, कही भी सुख शाति नही है ऐसा प्राणी भी जव आपकी तत्त्व ज्ञान रूप शरण लेता है तो वह ससार सागर से पार हो जाता है। यह युद्ध तो उसके आगे कोई मतलव नही रखता। भगवान की भक्ति से ऐसा प्रवल पुण्य का वन्ध होता हे कि अव्वल तो ऐसी मुसीवत आती नही, देवयोग से आ भी जावे तो उस पर विजय प्राप्त कर लेता है।

## मूलपाठ

**अम्भोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्र-**
**पाठीन-पीठभयदोल्वणवाडवाऽग्नौ ।**
**रङ्गत्तरङ्ग-शिखरस्थित-यानपात्रा-**
**स्त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजन्ति ॥४४॥**

अन्वयार्थ–(क्षुभितभीषणनक्रचक्र-पाठीन-पीठ-भयदोल्वणवाडवाग्नौ) जिसमें क्षुब्ध हुए भयकर मगरमच्छों के झुण्ड है, मछलियो के द्वारा भय-उत्पादक है तथा विकराल वडवानल है, ऐसे (अम्भोनिधौ) समुद्र मे (रगत्-तरग-शिखर-स्थित-यानपात्रा) चचल लहरों के अग्रभाग पर जिनके जलयान स्थित है, ऐसे लोग

(भवतः) आपके (स्मरणात्) स्मरण से (त्रास) डर (विहाय) छोडकर (व्रजन्ति) चले जाते हैं–यात्रा करते हैं ॥४४॥

## पद्यानुवाद

*नक्र चक्र मगरादि मच्छ करि भय उपजावै।*
*जामे वडवा अग्नि दाहतैं नीर जलावै॥*
*पार न पावै जास, थाह नहि लहिए जाकी।*
*गरजे अति गम्भीर लहर की गिनति न ताकी॥*
*सुख सो तिरै समुद्र को, जे तुम गुण सुमराहि।*
*लोल कलोलन के शिखर, पार यान ले जाहि॥*

## अर्थ–अभिप्राय

हे जगन्नाथ ! जिसमे विशालकाय भयकर मछलियाँ, मगर और घडियाल मुँह वाये इधर-उधर लहरा रहे हैं और महाभयावनी बाडवाग्नि अपना अत्यन्त प्रचण्ड रूप धारण किए हुए हैं ऐसे तूफानी समुद्र मे अत्यन्त ऊँची उछलती विकराल तरगो से जिनके जहाज डगमग डगमग हो उठते हैं आपका स्मरण कर वे निर्भयता के साथ समुद्र पार हो जाते हैं। अर्थात आकस्मिक विपत्तियाँ भी आत्मस्थ होने से विलीन हो जाती है।

भगवान के नाम के स्मरण की महिमा को फिर बताया है कि भगवान के नाम के स्मरण से सागर के मध्य भयकर तूफान भी मनुष्य का कुछ भी बिगाड नही कर सकता। इतना ही नहीं बल्कि इस भवसागर मे जहाँ यह प्राणी चौरासी लाख योनियो मे तरह-तरह के कष्टो को उठा रहा है उससे पार होने मे भी हे प्रभु ! भावपूर्वक आपके नाम का स्मरण ही सहायक है। आशय यह है कि अपनी अज्ञानता से इष्ट-अनिष्ट की कल्पना करते हुए जीव ससार मे सुख-दुख भोगता है। जब तक यह जीव अपने स्वरूप को नहीं जान लेता तब तक इस ससार रूपी जेल से छुटकारा नहीं मिलता। यह ससार भी एक बहुत बडा समुद्र है, उसमे यह प्राणी चारो गतियो मे उछलकूद कर रहा है। उससे पार होने का एक मात्र उपाय आपके नाम का स्मरण ही हे। आपके नाम का स्मरण भी वही प्राणी करेगा जिसने आपको द्रव्य-गुण-पर्याय से जाना हो।

## मूलपाठ

**उद्भूतभीषणजलोदर-भारभुग्नाः**
**शोच्यां दशामुपगताश्**

**त्वत्पाद-पङ्कजरजोऽमृतदिग्धदेहा**

**मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥४५॥**

अन्वयार्थ–(उद्भूतभीषणजलोदर–भारभुग्ना ) उत्पन्न हुए भयकर जलोदर रोग के भार से झुके हुए (शोच्या दशाम्) शोचनीय अवस्था को (उपगता ) पहुँचे हुए और (च्युत-जीविताशा.) जिन्होने जीने की आशा ही छोड दी हो, (मर्त्या ) मनुष्य (त्वत्पाद-पकज-रजोऽमृतदिग्ध-देहा·) आपके चरण कमलो की रज-रूपी अमृत से लिप्त शरीर वाले होकर (मकरध्वज तुल्यरूपा ) कामदेव के तुल्य रूप वाले (भवन्ति) हो जाते है ॥४५॥

## पद्यानुवाद

*महा जलोदर रोग, भार पीड़ित नर जे है,*
*वात, पित्त, कफ, कुष्ट आदि जो रोग गहे है।*
*सोचत रहे उदास नाहि जीवन की आशा,*
*अति घिनावनी देह धरै दुर्गन्ध निवासा॥*
*तुम पद पकज धूल को, जो लावै निज अग।*
*ते नीरोग शरीर लहि, छिन मे होय अनग॥*

## अर्थ–अभिप्राय

जो भयकर जलोदर रोग के भार से झुक गए हे अर्थात् पीड़ित हे। लगातार औषध-सेवन करते रहने पर भी उत्तरोत्तर रोग के बढने से जिन्होने अपने जीने की आशा छोड दी है, ऐसे अत्यन्त दयनीय अवस्था को प्राप्त पुरुष भी यदि आपके चरण रज रूप अमृत अपने शरीर पर लगाते हे तो वे नीरोग हो, कामदेव के समान सुन्दर शरीर वाले हो जाते हे अर्थात् आपके चरण-रज से असाध्य रोगी भी नीरोग हो जाते हे।

जिन्होने भगवान को सच्चे शुद्ध हृदय से अपने अन्दर विराजमान कर लिया तो उनके यह रोग ही दूर नही होते अपितु वह ससार सागर के जन्म-मरण से भी छूट जाता है। जब ऋद्धिधारी मुनीश्वरो के शरीर से छूकर आने वाली धूल और वायु मे नाना प्रकार के कष्ट ओर रोग दूर हो जाते हे तव साक्षात तीर्थंकर भगवान के चरणो की धूल से यह रोग दूर हो जावे, शरीर निरोग ओर सुन्दर हो जावे तो इसमे कोई अचम्भे वाली वात नही हे।

## मूलपाठ

**आपाद-कण्ठमुरु-शृङ्खल-वेष्टिताङ्गा**

**गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजङ्घाः ।**

**त्वन्नाममन्त्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः**
**सद्यः स्वयं विगतबन्धभया भवन्ति ॥४६॥**

अन्वयार्थ-(आपादकण्ठम्) पैर से लेकर कण्ठ तक (उरुशृखलवेष्टितागा ) वड़ी-बड़ी साकलो से जिनका शरीर जकड़ा हुआ हे (गाढ वृहन्निगडकोटि-निघृष्टजघा ) वडी-वडी वेड़ियो के अग्रभाग से जिनकी जाघे अत्यन्त रूप से घिस गई हैं, ऐसे (मनुजा ) मनुष्य (अनिशम्) निरन्तर (त्वन्नाम-मत्रम्) आपके नाम-रूपी मत्र को (स्मरन्तः) स्मरण करते हुए (सद्य ) शीघ्र ही (स्वयम्) अपने आप (विगतवन्धभया·) वन्धन के भय से रहित (भवन्ति) हो जाते है। ॥४६॥

## पद्यानुवाद

*पाव कठतै जकर वाध साकल अतिभारी,*
*गाढ़ी वेडी पैर माहि जिन जाघ विदारी।*
*भूख, प्यास, चिन्ता शरीर दुख जे विललाने,*
*शरण नाहि जिन कोय भूप के वन्दीखाने॥*
*तुम सुमरत स्वयमेव ही, वन्धन सव कट जाहि।*
*छिन मे ते सम्पति लहै, चिन्ता भय विनसाहि॥*

## अर्थ–अभिप्राय

जो पैरो से लेकर गले तक वडी-वडी मोटी साकलो से वँधे हुए हैं, जिनकी जाँघें वेडियो की तीक्ष्ण कोरो से छिल गई हैं, इस प्रकार से जेलखाने मे वद्ध, आजन्म कैद की सजा भोगने वाले भी पुरुष आपके नाम का निरन्तर स्मरण करने पर अपने आप वन्धनो के भय से मुक्त हो जाते हैं। हे प्रभो ! यह आपके नाम का प्रभाव है।

ससारी प्राणी अपनी ही अज्ञानता से नाम कर्म के द्वारा तरह-तरह के शरीर रूपी जेल को धारण करता हुआ भवरूपी ससार मे जन्म-मरण के चक्कर मे फसा हुआ हे, तरह-तरह की विपदाओ को सहन करता हे। जहॉ से निकलना भी मुश्किल हे ओर कोई सहारा देने वाला भी नही हे। ऐसे समय मे हे प्रभु ! केवल आपके नाम का सहारा ही काफी हे जो प्राणी को वन्धन से मुक्त करने मे सहायक होता हे। आशय यह है कि जिसने वीतराग भगवान सर्वज्ञ प्रभु को द्रव्य गुण और पर्याय से जान लिया है, मान लिया हे ओर उसी रूप मे अनुभव कर लिया है उसे इस शरीर आश्रित वेदनाओ का कष्ट मालूम नही होता ओर समय के साथ-साथ

अपनी आत्मा के स्वरूप मे लीन होकर ससार के आवागमन के चक्कर से छूट जाता है। पराधीन से स्वाधीन हो जाता है।

## मूलपाठ

**मत्तद्विपेन्द्र-मृगराज-दवानलाहि-**
**संग्राम-वारिधि-महोदर-वन्धनोत्थम् ।**
**तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव**
**यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥४७॥**

अन्वयार्थ–(य ) जो (मतिमान्) वुद्धिमान् मनुष्य (तावकम्) आपके (इमम्) इस (स्तवम्) स्तोत्र को (अधीते) पढ़ता है (तस्य) उसका (मत्तद्विपेन्द्र-मृगराज-दवानलाहि सग्राम-वारिधि-महोदर-वन्धनोत्थम्) मतवाले हाथी, सिह, दावानल, सर्प, युद्ध, समुद्र, जलोदर ओर वन्धन आदि से उत्पन्न हुआ (भयम्) डर (भिया इव) मानो भय से डर कर ही (आशु) शीघ्र (नाशम् उपयाति) नष्ट हो जाता है, भाग जाता है ॥४७॥

## पद्यानुवाद

*महामत्त गजराज और मृगराज दवानल,*
*फणपित रण परचण्ड नीरनिधि रोग महावल।*
*वन्धन ये भय आठ डरपकर मानो नाशै,*
*तुम सुमरत छिनमाहि अभय थानक परकाशै॥*
*इस अपार ससार मे, शरन नाहि प्रभु कोय।*
*ताते तुम पद-भक्त को, भक्ति सहायो होय॥*

## अर्थ—अभिप्राय

हे प्रभु ! जो वुद्धिमान जन आपके इस स्तोत्र का अध्ययन-मनन करता है उसके उन्मत्त हाथी, सिह, दावानल, सर्प, सग्राम, समुद्र, महोदर रोग ओर वन्धन जनित भय स्वत डरे हुए की भांति शीघ्र नष्ट हो जाते है। सच ही है, आपकी परमगाढ़ भक्ति जब कर्मभय से ही मुक्त कर शिव सुख देने मे समर्थ है, तब सासारिक क्षणिक भय उसके सामने किस तरह टिक सकते है?

जिनको सुबुद्धि जागई है, अपनी आत्मा के द्रव्य गुण, पर्याय को जानने की रुचि पैदा हो गई है, उसको जानने के मार्ग पर चल पडे है, साथ-साथ अनुभव

और आचरण भी करते जाते है। उनको ही सम्यक्त्व प्राप्त होता हे। सम्यग्दृष्टि को सात प्रकार का भय नही होता। वह आत्मोन्नति करते हुए आठो कर्मों पर विजय प्राप्त करके पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त करता है अर्थात् मोक्ष पद प्राप्त करता हे। कहने का तात्पर्य यह है कि जो भी व्यक्ति भाव-भक्ति से इस स्तोत्र का पाठ करता हे। उसके पास सात या आठ प्रकार के भय कभी फटकते ही नही। जिसने अपने पूर्ण स्वभाव की भक्ति की, वही भव के भय से मुक्त हो गया।

## मूलपाठ

**स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र ! गुणैर्निबद्धां,**
**भक्त्या मया रुचिरवर्णविचित्रपुष्पाम् ।**
**धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्रं**
**तं मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥४८॥**

अन्वयार्थ–(जिनेन्द्र !) हे जिनेन्द्र देव ! (इह) इस ससार मे (य जन.) जो मनुष्य (मया) मेरे द्वारा (भक्त्या) भक्ति पूर्वक (गुणै ) प्रसाद-माधुर्य-ओज आदि गुणो से–माला के पक्ष मे डोरो से (निबद्धाम्) गूँथी हुई–रची हुई (रुचिरवर्ण-विचित्रपुष्पाम्) मनोहर अक्षर रूपी विचित्र फूल वाली, माला पक्ष मे सुन्दर रगो वाले कई तरह के फूलो सहित (तव) आपकी (स्तोत्रस्रजम्) स्तुति रूपी माला को (अजस्रम्) निरन्तर (कण्ठगताम् धत्ते) कण्ठस्थ कर लेता है–माला पक्ष मे–गले मे धारण कर लेता है (तम्) उस (मानतुगम्) सम्मान से उन्नत पुरुष अथवा स्तोत्र-रचयिता आचार्य मानतुग को (लक्ष्मी ) स्वर्ग-मोक्ष आदि रूपी लक्ष्मी–विभूति (अवशा) विवश होकर अधीनता को (समुपैति) प्राप्त हो जाती है। ॥४८॥

## पद्यानुवाद

*यह गुणमाल विशाल नाथ तुम गुणन सवारी,*
*विविध वर्णमय, पुहुप गूथ मै भक्ति विथारी।*
*जो नर पहिरै कण्ठ, भावना मन मे भावे,*
*मानतुग ते निजाधीन शिवलक्ष्मी पावे॥*
*भाषा भक्तामर कियो, 'हेमराज' हित-हेत।*
*जो नर पढ़े सभावसो, ते पावैं शिवखेत॥*

## अर्थ–अभिप्राय

हे प्रभु ! जिस प्रकार चित्र-विचित्र मनोहर और सुगन्धित पुष्पो से गूथी हुई पुष्प माला धारण करने से शोभा का प्राप्त होना अनिवार्य है। उसी प्रकार परमगाढ भक्तिपूर्वक आपके पवित्र ज्ञानादि अनत गुणो से अथवा प्रसाद माधुर्य आदि गुणो सहित मनोज्ञ अकारादि वर्णों के श्लेप, यमक, अनुप्रासादि रूप मनोहारी पुष्पो से मेरे द्वारा रची हुई आपकी इस स्तोत्ररूपी माला को ससार मे जो पुरुप अपने कण्ठ मे सदेव धारण करते है। उन उन्नत हृदय वाले पुरुषो को या मुझ मानतुग मुनि को राज्य वेभव स्वर्गादि और परम्परा से मोक्ष लक्ष्मी विवश होकर प्राप्त होती है। आपकी चमत्कारमयी अत्यन्त गाढ भक्ति मे जो सतत् जागरूक रहता हैं उसकी आत्म-ज्योति का दिव्य प्रकाश आत्मा के प्रदेश-प्रदेश मे व्याप्त हो जाने के कारण चिरवासी कर्मचोर को छिपने का स्थान न मिलने के कारण भागते ही वन पडता है ओर तव चिररूठी मुक्तिश्री चिदानन्द राजा को पा चिरस्थायी चिरसुख की एक मात्र अधिकारिणी हो जाती है। आशय यह है कि जो इसका नियमित पाठ करता हे उसे ससार मे यश ओर कीर्ति मिलती है, सर्व सम्पदाओ की प्राप्ति होती हे।

॥ इति श्री भक्तामर-स्तोत्र ॥

## तृतीय अध्याय

# भक्तामर : पंचांग स्वरूप

(ऋद्धि, मंत्र, यंत्र, विधि एवं फलागम)

# मंत्र, यंत्र और भक्तामर : एक चिन्तन

## (पचांग-स्वरूप)

भारतवर्ष अनादिकाल से ज्ञान-विज्ञान की गवेषणा, अनुशीलन एव अनुसधान की भूमि रहा है। विद्याओ की विभिन्न शाखाओ मे भारतीय मनीषियो, ऋषियो एव अध्येताओ ने जो कुछ किया, नि सन्देह वह यहाँ की विचार-विमर्श एव चिन्तनप्रधान मनोवृत्ति का द्योतक है। दर्शन, व्याकरण, साहित्य, न्याय, गणित, ज्योतिष आदि सभी विद्याओ मे भारतीयो का कृतित्व और व्यक्तित्व अपनी कुछ ऐसी विशेषताएँ लिए हुए है जो अनेक दृष्टियो से असाधारण है। इसी गवेषणा के परिणामस्वरूप मत्र, यत्र, तत्र साधनाओ का प्रस्फुटन हुआ।

मत्र की अपने आप मे पूर्ण और स्वतत्र सत्ता है। जीवन के पार्थिव-अपार्थिव, चेतन-अचेतन, निष्क्रिय और सक्रिय जीवन मे मत्र की सर्वोपरि महत्ता है। विना मत्र के जीवन का अस्तित्व सम्भव ही नही। हमारे जीवन मे जो कुछ भी घटित हो रहा है इसके मूल मे मत्र की सत्ता विद्यमान है। विना मत्र के हमारे जीवन का कोई अस्तित्व नहीं। मानव जो कुछ वोलता है वह अपने आप मे शब्द है और जब शब्द का सम्वन्ध अर्थ से हो जाता है तो वह कल्याणमय बन जाता है। वे शब्द निरर्थक होते हैं जिनके मूल मे अर्थ विद्यमान नही रहता। मानव के मुँह से जो भी शब्द निकलता है वह 'मत्रमय' होता है।

मत्र मे ध्वनियाँ होती हैं और ध्वनियो के समूह को मत्र कहा जाता है। व्याकरण की दृष्टि से मत्र शब्द 'मन्' धातु (दिवादे ज्ञाने) से 'ष्ट्रन' (त्र) प्रत्यय लगकर वनाया जता है। जिसके द्वारा आत्मादेश का निजानुभव किया जाय वह मत्र हे। दूसरी प्रकार तनादिगणीय (तनादि अववोधे to consider) 'मन्' धातु से 'ष्ट्रन' प्रत्यय लगाकर मत्र शब्द वनता है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिसके द्वारा आत्मादेश पर विचार किया जावे वह मत्र हे। तीसरे प्रकार से सम्मानार्थक 'मन्' धातु से 'ष्ट्रन' प्रत्यय लगकर मत्र शब्द वनता है। इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिसके द्वारा परमपद मे स्थित पच उच्च आत्माओ का अथवा यक्षादि शासन देवो का सत्कार किया जावे वह मत्र है। मन के साथ जिन ध्वनियो का घर्षण होने से दिव्यज्योति प्रकट होती हे उन ध्वनियो के समुदाय को मत्र कहा जाता **है। मत्रो** का वार-वार उच्चारण किसी सोते हुए को वार-वार जगाने के समा**न है। यह** प्रक्रिया इसी के समान है जिस प्रकार किन्हीं दो स्थानो के वीच विज**ली** जे दिया जावे। साधक की विचार शक्ति, 'स्विच' का काम क

विद्युत लहर का। जव मत्र सिद्ध हो जाता है तव आत्मिक शक्ति से आकृष्ट देवता मात्रिक के समक्ष अपना आत्म समर्पण कर देता हे और उस देवता की सारी शक्ति उस मात्रिक मे आजाती है, अत मत्र अपने आप मे देव है। उच्चकोटि के मत्र का पूजन अर्चन करने के लिए यत्र होता है। मत्र देव हे तो यत्र देवगृह है, ऐसा माना जाता हे। मत्रविदो का कहना है कि तपोधन ऋषि-मुनियो द्वारा जो रेखाकृति वनाई जाती है, मनोरथ पूर्ण करने की जो शक्ति वीजाक्षरो मे हे उसे स्वय ही मत्र सामर्थ्य से रेखाकृतियो (यत्रो) मे भर देते है। मत्र और मत्र देवता, इन दोनो का शरीर यत्र कल्प मे होता है, कारण यत्र इन मत्र और मत्र देवता का शरीर होता हे।

मत्र-यत्र की स्थापना के वाद उनके विधि-विधान और क्रम के लिए तत्र अर्थात् शास्त्र की रचना होती है। शास्त्र के अर्थ मे तत्र को न लेकर उसे यत्र-मत्र के समकक्ष अर्थ मे समझना होगा। किसी विशेष समय मे किसी वस्तु विशेष को विधिपूर्वक लाकर उपयोग करना तत्र शास्त्र के अन्तर्गत आता है अर्थात् दिन, पक्ष, नक्षत्र, मास, लग्न आदि का ध्यान रखकर किसी वस्तु को विधिपूर्वक लाना तथा उद्देश्यानुसार उपयोग करना उसे तत्र विद्या कहा जाता है। तत्र विद्या मे मत्र साधना की आवश्यकता नही होती। यदि फिर भी उससे सम्वन्धित कोई मत्र हो तव उसे सिद्ध कर लेने मे तत्र अधिक गुणकारी हो जाता है। तत्रौषधि भी अपने आप मे देव मानी जाती है। अत मत्र-यत्र जितना गुणकारी है उतनी ही तत्र विद्या भी गुणकारी है। आचार्यों ने मत्र को देव, यत्र को उसका शरीर तथा तत्र को उसकी प्रिय वस्तु माना हे।

मत्र, यत्र ओर तत्र को क्रमश इस प्रकार समझा जा सकता हे। जो विशिष्ट प्रभावक शव्दो द्वारा निर्मित किया हुआ वाक्य होता हे वह मत्र कहा जाता हे। वार-वार जाप करने पर शव्दो के पारस्परिक सघर्षण के कारण वातावरण मे एक प्रकार की विद्युत तरगे उत्पन्न होने लगती हे तथा साधक की इच्छित भावनाओ को वल मिलने लगता हे। फिर वह जो चाहता हे, वही होता हे। मत्रो के लिए उनके हिसाव से जाप की सख्या, शव्द, वीजाक्षर, अक्षर तथा विभिन्न मत्रो के लिए विभिन्न प्रकार के पदार्थो से वनी मालाएं, विभिन्न प्रकार के फल-फूल, विभिन्न आसन, दिशाएँ, क्रियाएँ इत्यादि पहले से ही निर्धारित होती ह।

जिसने सिद्ध किए मत्रो से अभिमत्रित भोजपत्र, व कागज को अथवा किसी विशिष्ट प्रकार के निर्धारित अको, शव्दो आर आकृतियो से लिखित पत्र को चाँदी, सोना या ताँबे आदि के विशेष धातु के बने तावीज मे रख दिया जाता है अथवा या किसी की वाह मे वाँध दिया जाता हे, गले मे लटका दिया जाता है, किसी वस्तु विशेष के पत्रो पर लिखकर उचित स्थान पर रख दिया जाता है या

चिपका दिया जाता है, वह यत्र कहा जाता है। इससे कार्य-सिद्धि होती है। इन यत्र और मत्रो के अधिष्ठाता देव-देवियाँ चोवीस तीर्थंकरो की सेवा करने वाले चोवीस यक्ष-यक्षिणियाँ मानी गई हे। तीर्थंकर तो मुक्त हो जाते हैं, वीतराग होने से वे कुछ देते-लेते नही। धर्म प्रभावना की दृष्टि से यक्ष-यक्षिणियाँ आदि शासन देवता मत्र-यत्र साधको को लाभान्वित करते है। इसमे साधक का पुण्य-पाप कारण वनता हे।

तत्र मत्रविद्या का एक प्रमुख विशिष्ट अग हे। तत्रो का सम्वन्ध विज्ञान से है। इसमें कुछ ऐसी रासायनिक वस्तुओ का प्रयोग किया जाता हे, जिनसे एक चमत्कारपूर्ण स्थिति पैदा की जा सके। मानवी शक्ति प्राप्त करने के लिए मत्र यत्रगर्भित विशिष्ट प्रयोगो का वेज्ञानिक सचयन तत्र है। विद्वानो ने तत्र शब्द की व्याख्या मे दो आशयो को मुख्यतया रखा है। एक दृष्टिकोण इसे उस ज्ञान के मार्गदर्शक के रूप मे व्याख्यायित करता है, जिससे लौकिक द्रष्टा को असाधारण शक्ति, चमत्कार तथा वैशिष्ट्य का लाभ होता है। दूसरा दृष्टिकोण, अलौकिक या मोक्ष परक हे, इसलिए तत्र की चरम सिद्धि उस ज्ञान की वोधिका है, जिससे जन्म-मरण के बन्धन से उन्मुक्त होकर जीव सत्-चित्-आनन्दमय बन जाय, मोक्षगत हो जाय या सिद्धत्व प्राप्त कर ले। मंत्र और यत्र से यह विषय विशेषतया सम्वद्ध हे अत' तदनुरूप अभ्यास और साधनो से कार्य सिद्धिदायक है। तत्रो में मत्र भी प्रयोग मे आते हैं और यत्र भी। तत्र मे मत्र का प्रयोग कभी-कभी आवश्यक भी होता है क्योंकि उससे तत्र की शक्ति द्विगुणित हो जाती है। बाह्य दृष्टि से मत्र तत्र के द्वारा आकर्षण, मोहन, मारण, वशीकरण, उच्चाटनादि किया जाता है।

तत्र शास्त्र मे अनेक प्रकार की जडी, बूटियाँ, पंच गव्य, पचमकार आदि का भी प्रयोग किया जाता हे। इस कारण तत्र की उपादेयता और अहिसा, शौच आदि दृष्टियो से उसकी शुद्धि विवादास्पद हो जाती है। इसी कारण हमने तंत्र-प्रयोग को यहाँ सर्वथा छोड दिया है।

आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में कतिपय उदाहरणो द्वारा यह समझेगे कि भारतीय मत्र विद्या मात्र कपोल-कल्पना नही, अपितु इसके पीछे ठोस वेज्ञानिक सिद्धान्त काम करते हं। मत्र मे शब्द होते हैं और शब्दो के घर्षण मे सूक्ष्म शक्ति होती है। स्थूल-शरीर मे कुछ भी शक्ति नही हे अपितु हमारे सूक्ष्म शरीर (आत्मा) मे अनेक प्रकार की शक्तियाँ विद्यमान हें। जिनको मत्र की सूक्ष्म शक्ति से जगाकर हम असाधारण कार्यों का भी सम्पादन कर सकते हे। यह नियम है कि सूक्ष्म जगत में सूक्ष्म की ही पहुँच सम्भव हो सकती हे, स्थूल वस्तुओ का प्रवेश वहाँ निषिद्ध हे। मत्रो का आधार जव शब्दो का उच्चारण होता है तो उससे कम्पन उत्पन्न होते हैं।

वह कम्पन ईथर के माध्यम से विश्व की यात्रा मे अनुकूल कम्पनो के साथ मिलते हे, अनुकूलता मे एकता का सिद्धान्त हे। उन कम्पनो का पुज वन जाता हे और अपने केन्द्र तक (साधक) लोटते-लौटते अपनी पर्याप्त शक्ति वढा लेते हे और यह कार्य इतनी तीव्र गति से होता हे कि साधक को इसका अनुभव भी नही हो पाता कि शव्दो के उच्चारण मात्र से कैसे चमत्कार उत्पन्न हो रहे है। ससार मे शव्दो के अनेक चमत्कार प्रत्यक्षरूप से देखने को मिलते है। मेघ मल्हार से वर्षा की जाती हे, दीपक राग से वुझे हुए दीप जलाए जाते है। ढोल अथवा थाली वजाकर मत्र पढ़ते हुए सर्प-विच्छू आदि का जहर उतारा जाता हे।

आज से तीन दशक पूर्व लखनऊ के वेज्ञानिक श्री सी टी एम सिह ने स्लाइडो के माध्यम से यह सिद्ध किया कि सगीत की स्वर लहरी सुनाकर गायो एव भैसो से अपेक्षाकृत अधिक दूध प्राप्त होता हे। कटक और दिल्ली के कृषि अनुसधान केन्द्रो मे भी ऐसे ही परीक्षण किए गए हे जिनसे पेड-पोधो की उत्पादन शक्ति पर सगीत के प्रभाव का मूल्याकन किया गया हे। विदेशो मे भी ऐसे ही परीक्षणो का पता चला हे कि राग-रागिनियो से गन्ने, धान ओर नारियल आदि की खेती प्रभावित होती हे। ग्राहम ओर नील नामक दो वेज्ञानिको ने आस्ट्रेलिया के मेलवोर्न नगर की एक भारी भीड वाली सड़क पर शव्दशक्ति का वेज्ञानिक प्रयोग किया ओर सार्वजनिक प्रदर्शन मे सफल रहे। परीक्षण का माध्यम थी एक निर्जीव कार जिसे अपने इशारो पर नचाना चाहते थे ओर यह सिद्ध करना चाहते थे कि शव्दशक्ति की सहायता से विना किसी चालक के कार चल सकती हे। हजारो की सख्या मे लोगो ने देखा कि सचालक के कार स्टार्ट कहते ही कार चलना प्रारम्भ हो गई ओर 'गो' के सुनते ही गति पकड ली। लोग देखते ही रहे कि निर्जीव कार के भी कान होते ह जसे–थोडी दूर जाकर सचालक ने 'हाल्ट' का आदेश दिया तो वह कार तुरन्त रुक गई। यह कोई हाथ की सफाई का काम नही था, वरन् इसके पीछे विज्ञान का एक निश्चित सिद्धान्त काम कर रहा था। ग्राहम के हाथ मे एक छोटा ट्राजिस्टर था जिसका काम यह था कि आदेशकर्ता की ध्वनि को एक निश्चित फ्रीक्वेन्सी पर विद्युतशक्ति के द्वारा कार मे 'डेश वोर्ड' के नीचे लगे

समर्थन करते हैं। फ्रास की एक प्रसिद्ध महिला वैज्ञानिक फिनोलिग ने शब्द विज्ञान पर परीक्षण किए थे और उसने सिद्ध किया था कि शब्द के साथ मन और हृदय का सम्बन्ध रहता है। यह शब्द तरगो के जिस चमत्कारिक प्रभाव का वर्णन वैज्ञानिक परीक्षणो से किया गया हे उनका सचालन विद्युतशक्ति के द्वारा होता है। आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य मे शब्द की सामर्थ्य को सभी भौतिक शक्तियो से बटकर सूक्ष्म और विभेदन क्षमतावाली पाया तथा इसी बात की निश्चित जानकारी हमारे ऋषि-मुनियो के दिव्यज्ञान मे झलकती थी जिसके कारण उन्होने मत्र विद्या, यत्र विद्या तथा तत्र विद्या का विकास किया जिस पर अनेक ग्रथो का प्रणयन हुआ जिसमे मत्रो-तत्रो की विपुल विवेचना महनीय हे।

भारतीय मत्र शास्त्र की इस विशाल परम्परा में जेनधर्म में मत्र, यत्र एव तत्र से सम्बन्धित शास्त्र प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध होते हैं। जेनदर्शन की प्रत्येक विद्या का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सम्वन्ध वीर-वाणी से सश्लिष्ट है। विद्यानुवाद पूर्व नामक पूर्व मे मत्र, यत्र और तत्र का विस्तारपूर्वक विश्लेषण विवेचन हुआ है जिसके आधार पर वर्तमान मे उपलब्ध मत्र साहित्य निर्मित है।

भक्तामर स्तोत्र मत्र-गर्भित स्तोत्र है। ऋद्धि, मत्र और यत्रो से इसकी चमत्कारिकता विश्रुत हे। भक्तामर के चमत्कारो की सैकडो कथाएँ प्रसिद्ध हैं। भक्त वीतराग-भक्ति की अतल गहराई मे डूबकर निष्कलुष भाव से अनन्य प्रीति एव आस्था के साथ इष्टदेव प्रथम तीर्थंकर प्रभु ऋषभदेव का स्मरण करता है, उसके बन्धन टूटते हैं। यह स्तोत्र भक्ति से मुक्ति और मुक्ति से शान्ति प्राप्त करने का सबल साधन है। वस्तुत भक्तामर स्तोत्र भक्त को अमर पद पर प्रतिष्ठित करने वाला सोपान हे। श्रद्धा मे अनन्त बल है। असभव को सभव बनाने की शक्ति है। भक्तामर का शुद्ध, नियमित एव श्रद्धापूर्ण पाठ समस्त भय, विघ्न, बाधा, रोग, शोक, दुःख, दरिद्रता और अन्तस् के विकारो को नष्ट करने मे पूर्ण समर्थ है। स्तोत्र के प्रणेता आचार्य मानतुग ने प्रभावशाली मत्रो के बीज इस स्तोत्र में अच्छे चातुर्य से निविष्ट कर दिए हैं। अत यह समग्र स्तोत्र ही मत्र रूप है। इस स्तोत्र के प्रत्येक काव्य-छन्द का पृथक-पृथक यत्र तथा मत्र उपयुक्त मत्र व्याकरण के अनुसार विनिर्मित हे। प्राचीन मत्र शास्त्र मे भक्तामर स्तोत्र का दूसरा नाम मत्र-शास्त्र प्रसिद्ध है। इसके प्रत्येक श्लोक के प्रत्येक चरण मे बीज मत्र इतनी विलक्षणता से गुँथे हुए ह कि वे अनजाने ही अपना चमत्कारिक फल दिखाते हैं। हमारे समक्ष आज ऐसे मत्र शास्त्र नही हें जो इतनी विशद विवेचना कर सके और हमे भक्तामर के श्लोको में छिपे बीज मत्रो का ज्ञान दे सके, परन्तु इतना तो निश्चित हे कि इस स्तोत्र के पाठ से अपनी-अपनी श्रद्धा भक्ति के अनुसार भक्तजन विविध चमत्कारो का अनुभव करते हैं।

श्वेताम्वर परम्परा मे श्री हरिभद्र सूरि कृत भक्तामर के मत्र एव यत्र मय एक विस्तृत ग्रन्थ प्रसिद्ध है। उस ग्रन्थ मे ४८ श्लोको के ४८ यत्र दिये गये है।[1] यत्र-रचना की विधि भी वताई गई है और उसके अनुसार यत्रो की आकृतिया भी प्राप्त होती है।

यत्रो की आकृतियाँ दो प्रकार की शैली मे मिलती है। एक परम्परा के चतुष्कोण शेली मे मत्र आकृतियो मे उनके ऋद्धि एव मत्र को विविध वीज मत्रो से वेष्टित किया गया है। हमने उन्ही सर्व प्रचलित यत्रो को यहाँ प्रस्तुत किया है।

दूसरी परम्परा मे यत्रो की कोई एक आकृति नहीं मिलती, कोई चतुष्कोण, कोई वर्तुल आकार मे भी मिलती है। उनकी रचना मे भी मूल काव्य नही है, केवल ऋद्धि, मत्र एव वीजाक्षरो से वेष्टन किया गया है।

प्रस्तुत है यहा भक्तामर स्तोत्र का ऋद्धि, मत्र, यत्र विधि एक फल युक्त पचाग स्वरूप। यहाँ तत्र का विषय जानवूझकर छोड दिया गया है। यत्रो के चित्र इस अध्याय के अन्त मे दिये गये है।

## काव्य १

ऋद्धि–"ॐ ह्रीं अर्हं णमो अरिहताण णमो जिणाण ह्रा ह्री ह्रू ह्रौ ह्रः अ सि आ उ सा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झ्रौं झ्रौं स्वाहा।"

मत्र–"ॐ ह्रा ह्रीं ह्रू श्रीं क्लीं व्लू क्रौ ॐ ह्रीं नमः स्वाहा।"

विधि-विधान–श्वेत वस्त्र पहन कर, सफेद आसन पर पूर्व दिशा की ओर मुख करके पवित्र मनोभावो के साथ प्रतिदिन प्रात एकसौ आठ वार प्रथम काव्य, ऋद्धि तथा यत्र का आराधन करते हुए एक लाख जप सम्पन्न करना चाहिए।

फलागम–प्रथम यत्र को भूर्ज पत्र पर केशर से लिखकर सुगन्धित धूप की धूनी देकर अपने पास रखने से उपद्रव नष्ट होते हे, सोभाग्य की प्राप्ति होती हे आर लक्ष्मी का लाभ होता है। यह मत्र महाप्रभावक हे।

## काव्य २

ऋद्धि–"ॐ ह्रीं अर्हं णमो ओहि जिणाण।"

मत्र–"ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं व्लू नम ।"

विधि विधान–काले वस्त्र पहनकर, काली माला लेकर, काले-आसन पर पूर्व दिशा की ओर मुख करके दडासन माडकर इक्कीस या तीस दिन तक प्रतिदिन एक सौ आठ वार अथवा सात दिन तक प्रतिदिन एक हजार वार ऋद्धि तथा मत्र का [illegible] किया जाता है।

---

[1] [illegible] ४४ श्लोक ही मिलते है।)

फलागम– यत्र को पास मे रखने और द्वितीय काव्य एव ऋद्धि-मत्र के स्मरण करने से शत्रु तथा सिर की पीडा (शिरोशूल) नाश होती है, दृष्टिवन्ध अर्थात् वह क्रिया जिससे देखने वालो की दृष्टि मे भ्रम हो जाय, दूर होता हे। आराधक को मत्र-साधन तक एकासना करना चाहिए।

## काव्य ३

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो परमोहि जिणाणं।"

मत्र– "ॐ ह्री श्रीं क्ली सिद्धेभ्यो बुद्धेभ्यः सर्वसिद्धिदायकेभ्यो नम· स्वाहा।"

"ॐ नमो भगवते परमतत्त्वार्थ भावकार्यसिद्धि· ह्रा ह्रीं ह्रूं ह्रः असरूपाय नमः।"

विधि-विधान– पद्मबीज (कमलगट्टा) की माला से ऋद्धि और मत्र का सात दिन तक प्रतिदिन एक सौ आठ वार स्मरण किया जाता है।

फलागम– अजुलिभर जल को उक्त मत्र से मत्रित कर इक्कीस दिन तक मुख पर छींटे देने से सव लोग प्रसन्न होते हैं। यत्र को पास मे रखने तथा तीसरा काव्य, ऋद्धि, मत्र स्मरण करने से शत्रु की नजर वन्द हो जाती हे। दृष्टि दोष भी दूर होता है।

## काव्य ४

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोहि-जिणाणं।"

मत्र– "ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं जलयात्रा जलदेवताभ्यो नम· स्वाहा।"

विधि विधान– अशुद्धि से निवृत्त होकर स्वच्छ सफेद वस्त्र पहनकर यत्र स्थापित करे तथा यत्र की पूजा करे पश्चात् स्फटिक मणि की माला द्वारा सात दिन तक प्रतिदिन एक हजार बार ऋद्धि तथा मत्र का जाप करना चाहिए। दिन मे एक बार भोजन और रात्रि मे पृथ्वी पर शयन तथा ब्रह्मचर्य पालन करना चाहिए।

फलागम– यत्र को पास मे रखकर चौथा काव्य, ऋद्धि तथा मत्र का जप करने से मत्र-आराधक जल मे नही डूबता और तेज बहाव वाले पानी से वच निकलता है। जल उपद्रव शात होता है।

## काव्य ५

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो अणतोहि-जिणाण।"

मत्र– "ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं क्रौ सर्व सकट निवारणेभ्य. सुपार्श्व यक्षेभ्यो नमो नम· स्वाहा।"

विधि-विधान– पवित्र होकर पीले वस्त्र पहने, यत्र स्थापित कर पूजा करे, पश्चात पीले आसन पर वेठकर, पीले रग के फूलो अथवा चावल को केशर से रगकर सात दिन तक प्रतिदिन एक हजार वार ऋद्धि तथा मत्र का शुद्ध भाव से जाप किया जाता है।

फलागम- यत्र को पास में रखने और काव्य ऋद्धि मत्र द्वारा मत्रित जल को कुएँ में डालने से लाल रग के कीडे पैदा नही होते। जिसकी ऑखो मे दर्द हो, भयानक पीडा हो उसे सारे दिन भूखा रखकर सायंकाल मत्र द्वारा इक्कीस वार मत्रित कर वतासो को जल में घोलकर पिलाने और आँखों पर छीटने से दर्द दूर होता है।

## काव्य ६

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो कोट्ठवुद्धीण।"

मत्र– ॐ ह्रीं श्रा श्री श्रू श्र हं स थ थ थ ठ ठ सरस्वती भगवती विद्याप्रसादं कुरु कुरु स्वाहा।

विधि-विधान– पवित्र होकर लाल वस्त्र पहने, यत्र स्थापित कर पूजा करे, पश्चात् लाल आसन पर वेठकर इक्कीस दिन तक प्रतिदिन ऋद्धि तथा मत्र का एक हजार वार जाप करे। हर वार कुदरु की धूप क्षेपण करे। दिन मे एक वार भोजन ओर रात मे पृथ्वी पर शयन करना चाहिए।

फलागम– छठवॉ काव्य तथा उक्त मत्र को प्रतिदिन स्मरण करने से तथा यत्र को पास में रखने से स्मरण-शक्ति वढ़ती है, विद्या वहुत शीघ्र आती ह तथा विछुड़े हुए व्यक्ति से मिलाप होता हे।

## काव्य ७

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो वीजवुद्धीण।"

मत्र– "ॐ ह्रीं ह स श्रा श्री क्रौ क्ली सर्व दुरित-सकट-क्षुद्रोपद्रव कष्ट निवारण कुरु कुरु स्वाहा।" "ॐ ह्रीं श्री क्ली नम।"

विधि विधान– पवित्र होकर हरे रग के वस्त्र धारण कर हरे रग के आसन पर वैठकर हरी माला से इक्कीस दिन तक प्रतिदिन एक सो आठ वार सातवॉ काव्य, ऋद्धि तथा मत्र की जाप जपते हुए लोभान की धूप का क्षेपण किया जाता ह।

ाव्य ८

द्धि– "ॐ ह्री अर्ह णमो अरिहताण णमो पयाणुसारीण।"

त्र– "ॐ हा ह्री हू ह. असिआउसा अप्रतिचक्रे फट् विचक्राय झौ झौ स्वाहा। पुन ॐ ह्री लक्ष्मण रामचन्द्र देव्यै नमः स्वाहा।"

धि-विधान– अरिष्ट अर्थात् अरीठा के वीज की माला से उन्तीस दिन तक प्रतिदिन एक हजार वार ऋद्धि तथा मत्र का जाप जपते हुए घृत मिश्रित गुग्गल की धूप का क्षेपण किया जाता है। गृहस्थ नमक की डली से होम भी करते हैं।

फलागम– यत्र को पास मे रखने से तथा आठवाँ काव्य ऋद्धि मत्र के आराधन से सब प्रकार के अरिष्ट अर्थात् आपत्ति-विपत्ति-पीडा आदि दूर होते हे। नमक के सात टुकडे लेकर एक-एक को एक सो आठ वार मत्र कर पीडित अग को झाडने से पीडा दूर होती है।

काव्य ९

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्ह णमो अरिहताण णमो सभिण्णसोदराण।"
"ह्रा ह्री हू ह. फट् स्वाहा।"
"ॐ ऋद्धये नम.।"

मत्र– "ॐ ह्री श्रीं क्रौं क्लीं रः र॰ ह ह. नम स्वाहा।"
"ॐ नमो भगवते जय यक्षाय ह्रीं हू नम स्वाहा।"

विधि-विधान– नौवाँ काव्य, ऋद्धि और मत्र का प्रतिदिन एक सौ आठ बार जाप जपना चाहिए।

फलागम– इस काव्य, ऋद्धि और मत्र के वार-वार स्मरण करने तथा यत्र को पास मे रखने से मार्ग मे चोर डाकुओ का भय नही रहता। चार ककडियो को लेकर प्रत्येक ककरी को एक सौ आठ वार मत्र कर चारो दिशाओ मे फैकने से मार्ग कीलित हो जाता है।

काव्य १०

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्ह णमो सय-बुद्धीण।"

मन्त्र– "ॐ ह्रा ह्रीं ह्रौ ह्रः श्रा श्रीं श्रू श्र सिद्ध-वुद्ध कृतार्थो भव-भव वषट् सम्पूर्ण स्वाहा।"
(जन्मसध्यानतो जन्मतो वा मनोत्कर्ष-धृतावादिनोर्या-नाक्षान्ता भावे प्रत्यक्ष-वुद्धान्मनो)

"ॐ ह्रीं अर्हं णमो शत्रु विनाशनाय जय-पराजय उपसर्गहराय नम ।"

विधि-विधान– पीले रग के वस्त्र पहन कर, पीले रग की माला से सात या दस दिन तक प्रतिदिन एक सौ आठ वार दसवॉ काव्य ऋद्धि तथा मत्र का आराधन करते हुए कुँदरू की धूप क्षेपण किया जाता है।

फलागम– यत्र को पास मे रखने से कुत्ते के काटने का विष उतर जाता है। नमक की सात डली लेकर प्रत्येक को एक सौ आठ वार मत्र कर खाने से कुत्ते का विष असर नहीं करता।

## काव्य ११

ऋद्धि– "ॐ ह्री अर्हं णमो पत्तेय-वुद्धीण।"

मत्र– "ॐ ह्री श्री क्ली श्रा श्री कुमति-निवारिण्यै महामायायै नम· स्वाहा। ॐ नमो भगवते प्रसिद्धरूपाय भक्ति-युक्ताय सा सी सौ हा ह्री ह्रौ क्रौ झौ नमः।"

विधि-विधान– पवित्र होकर सफेद वस्त्र पहनकर शुद्ध भावो से जप करे। एकान्त भाग मे वेठकर या खडे होकर प्रसन्न चित्त से सफेद माला द्वारा या लाल रग की माला से इक्कीस दिन तक प्रतिदिन ग्यारहवॉ काव्य, ऋद्धि तथा मत्र का एक सौ आठ वार आराधन करते हुए कुदरू की धूप का क्षेपण किया जाता है।

फलागम– यत्र को पास मे रखने से जिसे आप पास वुलाना चाहते हो वह आ जाता हे। मुट्ठी भर सफेद सरसो को उक्त मत्र से वारह हजार वार मत्र कर ऊपर उछालकर फेकने से जलवृष्टि होती हे।

## काव्य १२

ऋद्धि– "ॐ ह्री अर्हं णमो वोहिवुद्धीण।"

मत्र– "ॐ आ आ अ अ सर्वराजा प्रजामोहिनी सर्वजनवश्य कुरु कुरु स्वाहा।" "ॐ नमो भगवते अतुलवलपराक्रमाय आदीश्वर यक्षाधिष्टाय हा ह्री नम । ॐ ह्री श्री क्लीं निजधर्मचिताय झ्रौं क्रो र ह्री नम ।"

फलागम– वारहवॉ काव्य ऋद्धि तथा मत्र स्मरण करने तथा यत्र को पास मे रखने से और एक सौ आठ बार तेल को उक्त मत्र द्वारा मंत्रित कर हाथी को पिलाने से उसका मद उतर जाता हे। वार-वार मत्र स्मरण से पति-पत्नी का गृह कलह शान्त हो जाता हे।

**काव्य १३**

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो उजुमतीण।"

मत्र– "ॐ ह्री श्रीं ह सः हौ ह्रा ह्री द्रा द्री द्रौ द्र मोहिनी सर्व वश्य कुरु कुरु स्वाहा। ॐ भा ना अष्टसिद्धि क्रौ हौ ह्म्ल्व्र्यूं युक्ताय नम । ॐ नमो भगवते सौभाग्य रूपाय ह्री नम॰।

विधि-विधान– पवित्र होकर पीले वस्त्र पहनकर पीली माला द्वारा सात दिन तक प्रतिदिन एक हजार बार ऋद्धि तथा मत्र का स्मरण करते हुए कुदरू की धूप क्षेपण की जाती है। साधना काल मे दिन मे एक वार भोजन एव रात मे पृथ्वी पर शयन करना चाहिए।

फलागम– तेरहवॉं काव्य ऋद्धि तथा मत्र के स्मरण से एव यत्र पास रखने ओर सात ककरी लेकर हरेक को एक सौ आठ बार मत्रकर चारो दिशाओ मे फेकने से चोर चोरी नही कर पाते तथा मार्ग मे किसी भी प्रकार का भय नही रहता।

**काव्य १४**

ऋद्धि– "ॐ ह्री अर्हं णमो विउलमतीण।"

मत्र– "ॐ नमो भगवती गुणवती महामानसी स्वाहा।"

विधि-विधान– पवित्र होकर सफेद वस्त्र धारण कर स्फटिक मणि की माला द्वारा प्रतिदिन तीनो काल एक सौ आठ वार चौदहवॉ काव्य, ऋद्धि तथा मत्र का आराधन करे, दीपक जलाकर, धूप प्रक्षेपण करे।

फलागम– यत्र पास रखने से तथा सात ककरी लेकर प्रत्येक को इक्कीस बार मत्रित कर चारो ओर फेकने से आधि-व्याधि ओर शत्रु का भय नाश होता हे। लक्ष्मी की प्राप्ति होती है तथा बुद्धि का विकास होता हे। सरस्वती देवी प्रसन्न होती है।

**काव्य १५**

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो दसपुव्वीण।"

मत्र– "ॐ नमो भगवती गुणवती सुसीमा पृथ्वी वज्र-शृंखला मानसी महामानसी स्वाहा।"

"ॐ नमो अचिन्त्यबल-पराक्रमाय सर्वार्थकामरूपाय ह्रा ह्रीं क्रौं श्रीं नम.।"

विधि-विधान– स्नान करके लाल रग के वस्त्र धारण कर लाल आसन पर बैठकर मूगा की लाल माला द्वारा चौदह दिन तक प्रतिदिन पन्द्रहवॉं काव्य, ऋद्धि तथा मत्र का स्मरण करते हुए दशाग धूप क्षेपण किया जाता है। तथा प्रतिदिन एकाशन करना चाहिए।

फलागम– उपरोक्त ऋद्धि मत्र द्वारा इक्कीस वार तेल मत्र कर मुख पर लगाने से राज-दरवार मे प्रभाव वढता है, सन्मान प्राप्त होता हे और लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। इस ऋद्धि मत्र के वारम्वार स्मरण से तथा भुजा पर यत्र वाधने से स्वप्नदोप कभी नही होता।

## काव्य १६

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो चउदसपुव्वीणं।"

मत्र– ॐ नम· सुमगला सुसीमा नामदेवी सर्वसमीहितार्थ वज्रशृखला कुरु कुरु स्वाहा।

विधि-विधान– स्नान द्वारा पवित्र होकर नौ दिन तक प्रतिदिन हरे रग की माला से एक हजार वार सोलहवॉं काव्य ऋद्धि तथा मत्र स्मरण करते हुए कुदरू की धूप क्षेपण किया जाता है।

फलागम– यत्र को पास मे रखने से तथा एक सौ आठ वार शुद्ध भावो से ऋद्धि मत्र का स्मरण कर राज दरवार मे पहुचने पर प्रतिपक्षी पराजित होता है और शत्रु का भय नही रहता। पुनश्च इसी ऋद्धि मत्र द्वारा जल मत्र कर छीटने से हर प्रकार की अग्नि शान्त हो जाती है।

## काव्य १७

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो अट्ठाग महानिमित्त-कुसलाण।"

मत्र– "ॐ णमो णमिऊण अट्ठे मट्ठे क्षुद्र विघट्टे क्षुद्रपीडा जठरपीडा भञ्जय भजय सर्वपीडा सर्वरोग-निवारण कुरु कुरु स्वाहा।"

"ॐ नमो अजित शत्रु पराजय कुरु कुरु स्वाहा।"

विधि-विधान– पवित्र भावो से सात दिन तक प्रतिदिन सफेद माला द्वारा एक हजार वार सत्रहवॉं काव्य,ऋद्धि तथा मत्र स्मरण करते हुए चदन की धूप क्षेपण करना चाहिए।

फलागम– यत्र को वॉधने तथा अछूता शुद्ध जल ऋद्धि मत्र द्वारा इक्कीस वार मत्र कर पिलाने से उदर की असाध्य पीडा, वायुगोला, वायुशूल आदि रोग दूर होते ह।

काव्य १८

ऋद्धि– "ॐ ह्री अर्हं णमो विउयणयड्ढि पत्ताण।"

मन्त्र– "ॐ नमो भगवते जय विजय मोहय मोहय स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा। ॐ नमो शास्त्र ज्ञानवोधनाय परमर्द्धि प्राप्ति जयकराय ह्रा ह्री क्रौ श्रीं नम'। ॐ नमो भगवते शत्रु सैन्य निवारणाय य य य क्षुर विध्वसनाय नम· क्ली ह्रीं नमः।"

विधि-विधान– पवित्र होकर लाल रग की माला द्वारा सात दिन तक प्रतिदिन एक हजार वार अठारहवॉं काव्य, ऋद्धि तथा मत्र स्मरण करते हुए दशाग धूप क्षेपण किया जाता हे। दिन मे एक बार शुद्ध भोजन करना चाहिए।

फलागम– यत्र को पास मे रखने से तथा १०८ वार ऋद्धि मत्र के स्मरण से शत्रु की सेना का स्तम्भन होता हे। इस मत्र का आराधन करने वाले आराधक के मन मे व्यर्थ के सकल्प विकल्प पैदा नही होते। चिन्ता, कोप, दुर्ध्यान, मोह, मिथ्यात्व का नाश होता है तथा धर्मध्यान मे चित्त स्थिर रहता है।

काव्य १९

ऋद्धि– "ॐ ह्री अर्हं णमो विज्जाहराण।"

मन्त्र– "ॐ ह्रा ह्रीं ह्रू ह्र य क्ष ह्रीं वषट् नम' स्वाहा।"

विधि-विधान– प्रतिदिन प्रात काल स्नान करके शुद्ध वस्त्र धारण करे तथा मन को एकाग्र करके उन्नीसवॉं काव्य, ऋद्धि तथा मत्र का एक सौ आठ वार स्मरण करना चाहिए।

फलागम– यत्र को पास मे रखने से आराधक पर प्रयोग किए हुए दूसरे के मत्र, विद्या, टोटका, जादू, मूठ आदि का प्रभाव नही पडता और न ही उच्चाटन का भय रहता है। यदि कोई भाग्यहीन पुरुष इस ऋद्धि मत्र का सतत स्मरण करे तो उसकी आजीविका सुचारु रूप से चलने लगती है। सभी सुख सुविधाएँ उपलब्ध होने लगती हैं।

काव्य २०

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो चारणाण।"

मन्त्र– "ॐ श्रा श्रीं श्रू श्रः शत्रु-भय-निवारणाय ठः ठ नमः स्वाहा। ॐ नमो भगवते पुत्रार्थसौख्यं कुरु कुरु स्वाहा, ह्रीं नमः।"

विधि-विधान– प्रात पवित्र होकर शुद्ध वस्त्र पहनकर यत्र स्थापित कर पूजा करे पश्चात् पूर्व दिशा की ओर मुख करके बेठकर नौ बार णमोकार मत्र पढ़े तदुपरान्त वीसवाँ काव्य, ऋद्धि तथा मत्र का एक सौ आठ बार स्मरण करे।

फलागम– यत्र को पास मे रखने से तथा ऋद्धि मत्र का एक सौ आठ बार स्मरण करने से सन्तान की प्राप्ति होती है, लक्ष्मी का लाभ, सौभाग्य की वृद्धि, विजयप्राप्ति तथा बुद्धि का विकास होता है।

## काव्य २१

ऋद्धि– "ॐ ह्री अर्हं णमो पण्ण-समणाण।"

मत्र– "ॐ नमो भगवते शत्रुभय निवारणाय नम·।" "ॐ नमः श्रीमणिभद्र जय-विजय अपराजिते सर्वसौभाग्य सर्वसौख्य कुरु कुरु स्वाहा।"

विधि-विधान– पवित्र होकर लाल वस्त्र धारण कर लाल माला द्वारा बयालीस दिन तक प्रतिदिन एक सौ आठ वार इक्कीसवॉ काव्य, ऋद्धि तथा मत्र का स्मरण करना चाहिए।

फलागम– यत्र पास मे रखने तथा काव्य, ऋद्धि और मत्र का स्मरण करते रहने से सर्वजन, स्वजन और परिजन अपने अधीन होते हैं– सभी अनुकूल एव वशीभूत होते है।

## काव्य २२

ऋद्धि– "ॐ ह्री अर्हं णमो आगास-गामिण।"

मत्र– "ॐ नमो श्री वीरेह्नि जृम्भय जृम्भय मोहय मोहय स्तम्भय स्तम्भय अवधारण कुरु कुरु स्वाहा।"

विधि विधान– पवित्र होकर शुद्ध वस्त्र धारण कर यत्र स्थापित कर उसकी पूजा करे। मगलकलश रखे, प्रज्वलित दीपक सामने रख पूर्व दिशा की' ओर मुख करके बेठकर प्रतिदिन एक सौ आठ बार बाईसवॉ काव्य ऋद्धि तथा मत्र का स्मरण करना चाहिए।

फलागम– यत्र को गले मे बॉधने से तथा हल्दी की गॉठ को इक्कीस बार ऋद्धि मत्र द्वारा मत्र कर चबाने से डाकिनी, शाकिनी, भूत, पिशाच, चुडेल आदि की बाधाएँ दूर होती ह।

## काव्य २३

ऋद्धि– "ॐ ह्री अर्हं णमो आसी-विसाण।"

मत्र– "ॐ नमो भगवती जयावती मम समीहितार्थ मोक्ष सौख्य कुरु कुरु स्वाहा। ॐ ह्रीं श्री क्ली सर्व सिद्धाय श्री नम·।"

विधि-विधान– शुभयोग मे पवित्र हो सफेद वस्त्र धारण कर उत्तराभिमुख यत्र स्थापित कर मगल कलश रखे, दीपक जलावे तथा यत्र की पूजा करे पश्चात् सफेद माला द्वारा चार हजार वार ऋद्धि मत्र का आराधन करके मत्र सिद्ध करना चाहिए।

फलागम– सर्वप्रथम स्वशरीर की रक्षा के लिए एक सौ आठ बार तेईसवाँ काव्य, ऋद्धि तथा मत्र स्मरण कर पश्चात् जिसे भूत-प्रेत की वाधा हो उसे यत्र बाँधे तथा मत्र द्वारा झाडे तो प्रेत वाधा दूर होती है।

## काव्य २४

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो दिट्ठि-विसाण।"

मत्र– "ॐ नमो भगवते वड्ढमाण सामिस्स सर्व समीहितं कुरु कुरु स्वाहा। ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौ ह्रः अ सि आ उ सा झ्रो झ्रो स्वाहा।"

विधि-विधान– पवित्र होकर गेरुवा रग के वस्त्र पहने, यत्र स्थापित कर पूजा करे, दीपक जलावे, आरती उतारे, पश्चात् प्रतिदिन एक सौ आठ बार अथवा सात दिन तक प्रतिदिन एक हजार वार ऋद्धि-मत्र का आराधन करना चाहिए।

फलागम– इक्कीस वार राख मत्र कर दुखते हुए शिर पर लगाने से और यत्र को पास मे रखने से आधाशीशी, सूर्यवात, मस्तक का वेग आदि शिर सम्बन्धी सव तरह की पीडाएँ दूर होती हैं।

## काव्य २५

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो उग्ग-तवाणं।"

मत्र– "ॐ ह्रा ह्रीं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा झ्रौ झ्रौ स्वाहा। ॐ नमो भगवते जय विजयापराजिते सर्व सौभाग्य सर्वसौख्य कुरु कुरु स्वाहा।"

विधि-विधान– पवित्र होकर लाल रग के वस्त्र पहनकर यत्र स्थापित कर उसकी पूजा करे, आरती उतारे। रात्रि के समय किसी एकान्त स्थान मे निर्भय होकर चार हजार वार ऋद्धि मत्र का स्मरण कर मत्र सिद्ध करना चाहिए।

फलागम– पच्चीसवाँ काव्य ऋद्धि तथा मत्र के स्मरण एव यत्र को पास मे रखने से धीज उतरती है। नजर उतरती है। दृष्टिदोष से वचता है, अग्नि का प्रभाव नही पडता तथा मारने के उद्यत शत्रु के हाथ से शस्त्र गिर पडता है, वह वार नही

## काव्य २६

ऋद्धि– "ॐ ह्री अर्हं णमो दित्त-तवाण।"

मत्र– "ॐ नमो ॐ हीं श्री क्ली हूं हू परजन-शान्ति व्यवहारे जय कुरु कुरु स्वाहा।"

विधि-विधान– शुद्ध होकर लाल रग के वस्त्र धारण कर उत्तर दिशा की ओर मुख करके यत्र स्थापित करे, आरती उतारे, यत्र का पूजन करे पश्चात् अर्द्धरात्रि से अपराह्न काल तक वारह हजार वार ऋद्धि मत्र का जाप जपकर मत्र सिद्ध करे।

फलागम– यत्र को पास मे रखने से तथा ऋद्धि-मत्र द्वारा एक सौ आठ वार तेल मत्र कर शिर पर लगाने से अर्धकपाली (आधे शिर की पीडा) नष्ट होती हे। मत्रित तेल की मालिश तथा मंत्रित जल को पिलाने से प्रसूता की पीडा दूर होती है। इस मत्र के प्रभाव से प्राणान्तक रोग भी शान्त हो जाते हे।

## काव्य २७

ऋद्धि– "ॐ हीं अर्हं णमो तत्त-तवाण।"

मत्र– "ॐ नमो चक्रेश्वरी देवी चक्रधारिणी चक्रेण-अनुकूल साधय साधय शत्रून् उन्मूलय उन्मूलय स्वाहा। ॐ नमो भगवते सर्वार्थ सिद्धाय सुखाय ही श्री नम।"

विधि-विधान– पवित्र होकर काले वस्त्र पहने, रक्त चन्दन से यत्र लिखकर स्थापित करे, यत्र की पूजा करे। पश्चात् २१ दिन तक प्रतिदिन काले रग की माला से एक सौ आठ वार सत्ताइसवॉ काव्य, ऋद्धि तथा मत्र का जाप करते हुए एक सौ आठ पुष्प चढ़ाना चाहिए। विना नमक का एक वार भोजन करना चाहिए।

फलागम– यत्र को पास मे रखने तथा ऋद्धि-मत्र का वार-वार स्मरण करते रहने से शत्रु मत्र आराधना मे कोई वाधा नही पहुँचा सकता। वह पराजित हो जाता हे।

## काव्य २८

ऋद्धि– "ॐ हीं अर्हं णमो महातवाण।"

मत्र– "ॐ नमो भगवते जये विजये, जृम्भय जृम्भय, मोहय मोहय, सर्वसिद्धि सम्पति-सोख्य कुरु कुरु स्वाहा।"

विधि-विधान– पवित्र होकर पीले वस्त्र धारण करे, उत्तर या पूर्व दिशा की ओर मुख करके यत्र स्थापित कर उसकी पूजा करे पश्चात् पीले आसन पर वैठकर पीली माला द्वारा प्रतिदिन एक हजार वार

ऋद्धि मत्र का आराधन कर वारह हजार जप पूरा करे। पीले फूल चढावे।

फलागम– यत्र पास मे रखने तथा प्रतिदिन अट्ठाईसवॉ काव्य ऋद्धि तथा मत्र के आराधन करते रहने से व्यापार मे लाभ, सुख-समृद्धि, यश, विजय, सन्मान तथा राजदरवार मे प्रतिष्ठा बढती है।

## काव्य २९

ऋद्धि– "ॐ ह्री अर्हं णमो घोर-तवाण।"

मत्र– **"ॐ णमो णमिऊण पास विसहर फुलिग मतो विसहर नाम रकार मतो सर्वसिद्धि-मीहे इह समरंताणं मण्णे-जागई कप्पदुमच्च सर्वसिद्धि ॐ नम· स्वाहा।"**

विधि-विधान– स्नान करके आसमानी रग के वस्त्र धारण कर उत्तर दिशा की ओर मुख करके यत्र स्थापित करे, आरती उतारे, पूजा करे, मत्र सिद्धि पर्यन्त प्रतिदिन एक हजार वार ऋद्धि मत्र की आराधना करना चाहिए।

फलागम– यत्र पास मे रखने तथा उन्तीसवॉं काव्य ऋद्धि और मत्र द्वारा एक सौ आठ वार मत्र कर जल पिलाने से नशीले स्थावर पदार्थ जैसे भाग, चरस, धतूरा आदि नशे का प्रभाव दूर होता है तथा दुखती ऑख की पीडा दूर होती है। विच्छू का विष भी उतर जाता हे।

## काव्य ३०

ऋद्धि– "ॐ श्री अर्हं णमो घोर-गुणाण।"

मत्र– **" ॐ (ह्री श्री श्री पार्श्वनाथाय ह्री धरणेन्द्र पद्मावती सहिताय) नमो अट्ठे मट्ठे क्षुद्रान् स्तम्भय स्तम्भय रक्षां कुरु कुरु स्वाहा।**

विधि-विधान– स्नान के वाद सफेद वस्त्र धारण कर पूर्व दिशा की ओर मुख करके यत्र स्थापित करे, यत्र की पूजा करे, सफेद फूल चढ़ावे, आरती उतारे पश्चात् सफेद आसन पर पद्मासन बैठकर स्फटिक मणि की माला द्वारा प्रतिदिन एक हजार वार ऋद्धि मत्र का आराधन कर उसे सिद्ध करना चाहिए।

फलागम– उपरोक्त ऋद्धि मत्र के वार-वार स्मरण करने तथा यत्र को पास मे रखने से शत्रु का स्तम्भन होता हे। वियावान वन मे चोर सिहादिक हिसक पशुओ का भय नही रहता। सव प्रकार के भय दूर भाग जाते हे।

## काव्य ३१

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोर गुण-परक्कमाण।"

मन्त्र– ॐ उवसग्गहरं पास पास वंदामि कम्म-घण-मुक्क। विसहर विसंणिण्णास मंगल-कल्लाण-आवास ॐ ह्रीं नमः स्वाहा।

विधि-विधान– पवित्र होकर रक्त वर्ण के वस्त्र धारण कर यन्त्र स्थापित करे, यन्त्र की पूजा करे, जल से परिपूर्ण कलश रखे, पश्चात् उत्तर दिशा की ओर मुख करके लाल आसन पर पद्मासन लगाकर प्रतिदिन ऋद्धि मन्त्र का जाप जपते हुए ७५०० सौ जाप पूरा करे।

फलागम– प्रतिदिन एक सौ आठ वार ३१वाँ काव्य, ऋद्धि तथा मन्त्र स्मरण करने और यन्त्र को पास मे रखने से राजदरवार मे सम्मान मिलता है–राजा वश मे होता है तथा सव तरह के चर्म रोगो से छुटकारा हो जाता है।

## काव्य ३२

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो घोर गुणवंभचारिण।"

मन्त्र– "ॐ नमो ह्रां ह्रीं ह्रू ह्रौं ह्रः सर्व-दोष-निवारण कुरु कुरु स्वाहा। सर्व सिद्धि वृद्धिं वांछा पूर्णं कुरु कुरु स्वाहा।"

विधि-विधान– पवित्र होकर पीत वर्ण के वस्त्र धारण कर यन्त्र स्थापित करे, पार्श्वभाग मे मगल-कलश रखे, यन्त्र की पूजा करे, पश्चात् पूर्व दिशा की ओर मुख करके पद्मासन लगाकर एक हजार आठ बार पीली माला से ऋद्धि-मन्त्र जपकर मन्त्र सिद्ध करना चाहिए।

फलागम– अविवाहित कन्या द्वारा काते हुए कच्चे धागे को वत्तीसवाँ काव्य, ऋद्धि तथा मन्त्र द्वारा इक्कीस वार या एक सौ आठ वार मन्त्र कर उस धागे को गले में वाँधने से ओर यन्त्र को पास में रखने से सग्रहणी आदि उदर की सव तरह की पीडाये दूर होती हे।

## काव्य ३३

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहि-पत्ताण।"

मन्त्र– "ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं व्लू ध्यान-सिद्धि परम-योगीश्वराय नमो नम. स्वाहा।"

विधि-विधान– पवित्र होकर धवल वस्त्र धारण कर पूर्व दिशा की ओर मुख करके यन्त्र स्थापित करे, यन्त्र की पूजा-अर्चा करे पश्चात् सफेद आसन पर उत्तर दिशा की ओर मुख करके वैठकर सफेद माला द्वारा घृत मिश्रित गुग्गुल की धूप क्षेपण करते हुए एक हजार

द्वारा घृत मिश्रित गुग्गुल की धूप क्षेपण करते हुए एक हजार आठ बार ऋद्धि-मंत्र का जाप कर सिद्धि प्राप्त करना चाहिए।

फलागम– कुमारी कन्या द्वारा काते हुए कच्चे धागे का गडा वनाकर और उसे तेतीसवे काव्य ऋद्धि तथा मंत्र द्वारा इक्कीस बार मत्र कर वाँधने, झाडा देने तथा यत्र पास में रखने से एकातरा, ताप ज्वर, तिजारी आदि रोग दूर होते हैं।

## काव्य ३४

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो खिल्लोसहिपत्ताणं।"

मत्र– **"ॐ नमो ह्रीं श्री ऐ ह्रौं पद्मावत्यै देव्यै नमो नमः स्वाहा। ॐ प च य म ह्रां ह्रीं नमः।"**

विधि-विधान– पवित्र होकर सफेद रेशमी वस्त्र धारण कर उत्तर दिशा की ओर मुख करके मगल कलश तथा यत्र की स्थापना कर यत्र पूजा करे, पश्चात् सफेद आसन पर पूर्व दिशा की ओर मुख करके पद्मासन लगाकर स्फटिक मणि की माला द्वारा वारह हजार बार ऋद्धि मत्र जपकर सिद्धि प्राप्त करना चाहिए।

फलागम– केशरिया रग से रंगे हुए धागे को एक सौ आठ बार चौतीसवे काव्य, ऋद्धि तथा मत्र से मत्रित कर गूगल की धूनी देकर गले मे या कटिप्रदेश मे बाँधने और यत्र को पास मे रखने से गर्भ का स्तम्भन होता है, असमय मे गर्भ का पतन नही होता।

## काव्य ३५

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो जल्लोसहिपत्ताण।"

मत्र– **"ॐ नमो जय विजय अपराजिते महालक्ष्मी अमृतवर्षिणी अमृतस्राविणी अमृतं भव भव वषट् सुधायै स्वाहा। ॐ नमो गजगमने सर्व कल्याणमूर्ते रक्ष रक्ष नमः स्वाहा।"**

विधि-विधान– पवित्र होकर पीले रंग के वस्त्र धारण कर उत्तर दिशा की ओर मुख करके यत्र स्थापित करे, यत्र की पूजा करे, पीले फूल चढ़ावे। दीप प्रज्वलित करे पश्चात् पीले रंग की माला द्वारा चार हजार वार ऋद्धि-मत्र की साधना कर सिद्धि प्राप्त करना चाहिए। पीछे प्रतिदिन एक सौ आठ वार जप जपना चाहिए।

फलागम– यत्र पास मे रखने ओर पैतीसवे काव्य ऋद्धि तथा मत्र की आराधना से मरी, मिरगी, चोरी, दुर्भिक्ष, राज्य-भय आदि दूर होते हैं तथा व्यापार मे लाभ होता है, राज्य मे मान्यता होती है, वचन प्रामाणिक माने जाते हैं।

## काव्य ३६

ऋद्धि– "ॐ ह्री अर्हं णमो विप्पोसहि-पत्ताण।"

मत्र– "ॐ ह्री श्री कलिकुण्ड-दण्ड-स्वामिन् आगच्छ आगच्छ। आत्ममत्रान् आकर्षय आकर्षय। आत्ममत्रान् रक्ष रक्ष। परमंत्रान् छिन्द छिन्द मम समीहित कुरु कुरु स्वाहा।"

विधि-विधान– स्नान करके पीले वस्त्र धारण कर उत्तरदिशा की ओर मुख करके यत्र स्थापित कर यत्र की पूजा पीले फूलो से करे, दीपक जलावे पश्चात् पीले आसन पर पद्मासन लगाकर पीली माला द्वारा वारह हजार जप पूर्ण कर मत्र सिद्ध करना चाहिए।

फलागम– यत्र पास मे रखने तथा प्रतिदिन एक सौ आठ वार छत्तीसवे काव्य ऋद्धि मत्र के आराधन से सुवर्णादिक धातुओ के व्यापार मे लक्ष्मी का लाभ होता है। राज्य मे मान्यता प्राप्त होती है। पाँच पचो मे वात प्रामाणिक मानी जाती है।

## काव्य ३७

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहि-पत्ताण।"

मत्र– "ॐ नमो भगवते अप्रतिचक्रे ऐ क्ली ब्लू ॐ ह्री मनोवांछित-सिद्धयै नमो नमः अप्रतिचक्रे ह्रीं ठ ठ स्वाहा।"

विधि-विधान– स्नान करके सफेद वस्त्र धारण कर उत्तर दिशा की ओर मुख करके यत्र स्थापित कर उसकी पूजा अर्चा करे पश्चात् धवलासन पर वेठकर गुग्गुल कपूर केशर कस्तूरी मिश्रित एक हजार आठ गोली बनावे ओर ऋद्धि-मत्र का जाप करते हुए एक-एक गोली अग्नि मे छोडता जावे। इस प्रकार मत्राराधन कर सिद्धि प्राप्त करना चाहिए।

फलागम– यत्र पास मे रखने तथा सेतीसवे काव्य ऋद्धि तथा मत्र से इक्कीस वार जल मत्र कर मुख पर छिडकने से दुष्ट पुरुषो के दुर्वचनो का स्तम्भन होता हे ओर दुर्जन पुरुष वश मे होता हे, कीर्ति तथा यश की वृद्धि होती है।

## काव्य ३८

ऋद्धि– "ॐ ह्री अर्हं णमो मणवलीण।"

मत्र– "ॐ नमो भगवते महा-नाग-कुलोच्चाटिनी काल-द्रष्ट्र मृतकोत्थापिनी पर-मत्र प्रणाशिनी देवि शासन देवते ह्री

नमो नमः स्वाहा। ॐ ह्री शत्रुविजयरणरणाग्रे ग्रां ग्री ग्रूं ग्रः नमो नमः स्वाहा।"

विधि-विधान– पवित्र होकर पीले वस्त्र पहनकर उत्तर दिशा की ओर मुख करके यत्र स्थापित कर यत्र की पूजार्चा करने के पश्चात् पीले आसन पर बैठकर पीली माला द्वारा एक हजार आठ बार ऋद्धि-मत्र का स्मरण करते हुए मत्र सिद्ध करना चाहिए।

फलागम– अडतीसवाँ काव्य ऋद्धि तथा मत्र का बारम्बार आराधन करने और यत्र को पास मे रखने से मदोन्मत्त हाथी वश मे होता है और अर्थ की प्राप्ति होती है।

## काव्य ३९

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो वयणबलीण।"

मत्र– "ॐ नमो एषु वृत्तेषु वर्द्धमान तव भयहर वृत्ति वर्णायेषु मंत्रा· पुन स्मर्तव्या अतो ना-परमंत्र-निवेदनाय नमः स्वाहा।

विधि-विधान– पवित्र होकर पीले वस्त्र पहनकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके यत्र स्थापित कर उसकी पूजा करे। पश्चात् पीले आसन पर उत्तर दिशा की ओर मुख करके बैठकर पीत वर्ण की माला द्वारा एक हजार आठ बार ऋद्धि-मत्र का शुद्ध मन से आराधन करे तथा प्रत्येक मत्र के बाद गुग्गुल, केशर, कर्पूर, कस्तूरी, घृत मिश्रित धूप को खेते रहना चाहिए।

फलागम– यत्र को पास मे रखने तथा उनतालीसवे काव्य ऋद्धि और मत्र के स्मरण करने से मार्ग मे सर्प, सिह, वाघ आदि जगली क्रूर हिसक पशुओ का भय नहीं रहता तथा विस्मृत रास्ता मिल जाता है और आराधक गन्तव्य स्थान को विना किसी कष्ट के प्राप्त कर लेता है।

## काव्य ४०

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो कायबलीण।"

मत्र– "ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ह्रा ह्रीं अग्निमुपशमन शान्ति कुरु कुरु स्वाहा।

विधि-विधान– पवित्र होकर लाल रग के वस्त्र पहनकर पूर्वाभिमुख मगल कलश तथा उत्तराभिमुख यत्र स्थापित कर यत्र की पूजा करे। पश्चात् लाल आसन पर पूर्वाभिमुख वेठकर लाल रग की माला से

ऋद्धि-मत्र का वारह हजार वार जप करके मत्र सिद्ध करना चाहिए।

फलागम– यत्र को पास मे रखने से तथा चालीसवे काव्य ऋद्धि एव मत्र से इक्कीस वार जल मत्र कर चारों ओर छिड़कने से अग्नि का भय दूर होता है।

**काव्य ४१–**

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो खीरासवीण।"

मत्र– "ॐ नमो श्रां श्रीं श्रूं श्रौं श्रः जलदेविकमले पद्महद निवासिनी पदमोपरि-सस्थिते सिद्धि देहि मनोवाछित कुरु कुरु स्वाहा।
ॐ ह्रीं आदिदेवाय ह्रीं नमः।"

विधि-विधान– स्नान करके सफेद वस्त्र धारण कर पूर्वाभिमुख यत्र स्थापित कर उसकी पूजा करे, दीपक जलावे, आरती उतारे। पश्चात् सफेद आसन पर उत्तराभिमुख वैठकर स्फटिक मणि की माला द्वारा ऋद्धि-मत्र का वारह हजार वार आराधन कर मत्र सिद्ध करना चाहिए।

फलागम– यत्र को पास मे रखने से तथा इकतालीसवाँ काव्य ऋद्धि तथा मत्र का वार-वार स्मरण करने से राजदरवार मे सम्मान मिलता है, प्रतिष्ठा वढ़ती है तथा इसी मत्र के झाड़ने से विषधर का विष उतरता है। कास्य-पात्र मे जल भरकर एक सौ आठ वार मत्र कर मंत्रित जल पिलाने से विष का प्रभाव दूर हो जाता है।

**काव्य ४२**

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो सप्पिसवाण।"

मत्र– "ॐ नमो णमिऊण विषधर-विष-प्रणासन-रोग-शोक-दोष ग्रह कप्पदुमच्च जायई सुहनाम ग्रहण सकल सुहृदे ॐ नमः स्वाहा।"

विधि-विधान– पवित्र होकर धवल वस्त्र पहनकर रक्तचदन से लिखे यत्र को पूर्व दिशा की ओर स्थापित करे, यत्र की पूजा करे, दीपक जलावे, आरती उतारे, पश्चात् रक्त आसन पर उत्तराभिमुख वैठकर लाल रग की माला द्वारा वारह हजार पॉच सौ वार ऋद्धि-मत्र का जाप जपे तथा मत्र सिद्ध करे।

फलागम- यत्र को भुजा मे वॉधने तथा ऋद्धि मत्र का स्मरण करते रहने से भयकर युद्ध मे भी भय उत्पन्न नही होता। राजा का क्रोध शान्त

होता है और वह पीठ दिखाकर भाग जाता है। चन्दा की चाँदनी-सी कीर्ति चारो ओर फैलती है।

**काव्य ४३**

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो महुरसवाण।"

मन्त्र– **"ॐ नमो चक्रेश्वरी देवी चक्रधारिणी जिन-शासन-सेवाकारिणी क्षुद्रोपद्रव-विनाशिनी धर्मशान्तिकारिणी नमः शान्ति कुरु कुरु स्वाहा।"**

विधि-विधान– स्नान करके शुद्ध स्वच्छ सफेद वस्त्र धारण कर पूर्व दिशा की ओर यत्र स्थापित कर यत्र की पूजा करना चाहिए पश्चात् उत्तराभिमुख सफेद आसन पर बैठकर सफेद माला द्वारा बारह हजार पाँच सौ बार ऋद्धि-मत्र का आराधन कर मत्र सिद्ध करे।

फलागम– तेतालीसवाँ काव्य, ऋद्धि, तथा मत्र के स्मरण करने और यत्र की पूजा करने एव उसे पास मे रखने से सब प्रकार के भय दूर होते हैं। सग्राम मे अस्त्र-शस्त्रो की चोटें नही लगतीं तथा राजा द्वारा धन लाभ होता है।

**काव्य ४४**

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो अमीअसवाणं।"

मन्त्र– **"ॐ नमो रावणाय विभीषणाय कुम्भकरणाय लंकाधिपतये महाबल पराक्रमाय मनश्चिन्तितं कुरु कुरु स्वाहा।"**

विधि-विधान– स्नान के बाद सफेद स्वच्छ वस्त्र धारण कर उत्तर दिशा की ओर मुख करके यत्र स्थापित कर यत्र की पूजा करे, मगल कलश रखे, दीपक जलावे, आरती उतारे पश्चात् धवलासन पर बैठकर स्फटिकमणि की माला द्वारा एक हजार आठ बार ऋद्धि मंत्र का आराधन कर मत्र सिद्ध करना चाहिए।

फलागम– चवालीसवाँ काव्य, ऋद्धि तथा मंत्र की आराधना से तथा यत्र को अपने पास रखने से आपत्तियाँ दूर होती हैं। समुद्र मे तूफान का भय नहीं होता। आसानी से समुद्र पार कर लिया जाता है।

**काव्य ४५**

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खीणमहाणसाण।"

मन्त्र– "ॐ नमो भगवती क्षुद्रोपद्रव-शान्तिकारिणी रोगकष्ट ज्वरोपशमनं शान्ति कुरु कुरु स्वाहा। ॐ ह्री भगवते भयभीषणहराय नमः।"

विधि-विधान– पवित्र होकर पीले रग के वस्त्र पहनकर दक्षिण दिशा की ओर यत्र स्थापित कर यत्र की पूजा करे पश्चात् पीले आसन पर वैठकर पीले रग की माला द्वारा एक हजार आठ वार ऋद्धि मत्र का स्मरण कर मत्र सिद्ध करना चाहिए।

फलागम– पैतालीसवॉ काव्य ऋद्धि तथा यत्र जपने और यत्र को पास मे रखने से तथा उसकी त्रिकाल पूजा करने से अनेक प्रकार की व्याधियो की पीडा शान्त होती है और महाभयानक मरण-भय-जलोदर, भगन्दर, गलित कोढ़ आदि शान्त होते हैं तथा उपसर्ग दूर होते हैं।

## काव्य ४६

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो वड्ढमाणाण।"

मत्र– "ॐ नमो ह्रा ह्रीं श्री ह्रू ह्रौ ह्र ठः ठः ज. जः क्षां क्षीं क्षूँ क्षः क्षयः स्वाहा।"

विधि-विधान– स्नान के वाद पीले रग के वस्त्र पहनकर पूर्व दिशा की ओर मुख करके यत्र स्थापित कर पीले फूलो से यत्र की पूजा करना चाहिए। मगलकलश की स्थापना भी करे, दीपक जलाकर आरती उतारे पश्चात् पीले आसन पर उत्तराभिमुख वैठकर पीली माला द्वारा ऋद्धि मत्र का वारह हजार वार जप पूरा करे तो मत्र सिद्ध होवे।

फलागम– सकट आने पर निरन्तर छियालीसवॉ काव्य ऋद्धि तथा मत्र को जपने ओर यत्र को पास मे रखने तथा उसकी त्रिकाल पूजा करने से कारागार मे लौह शृखलाओ से वँधा हुआ शरीर वन्धन मुक्त हो जाता हे ओर कैद से छुटकारा होता है। राजा आदि का भय नही रहता।

## काव्य ४७

ऋद्धि– "ॐ ह्री अर्हं णमो सव्व सिद्धायदणाण वड्ढमाणाण।"

मत्र– "ॐ नमो ह्रां ह्रीं ह्रू ह्र. य क्ष श्रीं ह्रीं फट् स्वाहा।"

विधि-विधान– स्नान करके शुद्ध वस्त्र पहनकर उत्तरदिशा की ओर मुख करके यत्र स्थापित कर उसकी पूजा-अर्चा करना चाहिए। पश्चात् धवल आसन पर पूर्व दिशा की ओर मुख करके वेठकर सफेद माला द्वारा नौ हजार वार ऋद्धि मत्र का आराधन कर मत्र सिद्ध करना चाहिए।

फलागम– यत्र को पास मे रखने, यत्र का अभिषेक कर उसकी पूजा-अर्चा करके सैतालीसवाँ काव्य ऋद्धि तथा मत्र का एक सौ-आठ बार पवित्र भावो के साथ स्मरण करने से विपक्षी शत्रु पर चढ़ाई करने वाले को विजयलक्ष्मी प्राप्त होती है, शत्रु का नाश और उसके सभी हथियार मोथरे हो जाते हैं, बन्दूक की गोली बरछी आदि के घाव नही होते। इसके अतिरिक्त मदोन्मत्त हस्ती, सिह, दावानल, भयकर सर्प, समुद्र, महान् रोग तथा अनेक तरह के वन्धनो से छुटकारा हो जाता है।

**काव्य ४८**

ऋद्धि– "ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वसाहूण ॐ णमो भयवं महति महावीर वड्ढमाणं बुद्धिरिसीणं।

मत्र– ॐ ह्रा ह्रीं ह्रू ह्रौ ह्र: अ सि आ उ सा झ्रौ झ्रौ स्वाहा।
ॐ नमो बंभचारिणे अट्ठारह सहस्र सीलागरथधारिणे नमः स्वाहा।

विधि-विधान– स्नान करके पीले रग के वस्त्र धारण कर उत्तर दिशा की ओर मुख करके यत्र स्थापित कर पीले पुष्पो से मत्र की पूजा करके पीले आसन पर पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठ कर पीले रग की माला द्वारा चार हजार पाँच सौ बार अथवा एक लाख बार ऋद्धि मत्र का आराधन सात महीने मे पूर्ण कर मंत्र सिद्ध करना चाहिए।

फलागम– प्रतिदिन एक सौ आठ बार इक्कीस दिन तक अथवा उनचास दिन तक ऋद्धि मत्र तथा अडतालीसवाँ काव्य का स्मरण करने और मत्र को पास मे रखने से मनोवाछित कार्य की सिद्धि होती है। जिसको अपने अधीन करना हो उस व्यक्ति का नाम चिन्तन करने से वह व्यक्ति अपने वश मे होता है। लक्ष्मी प्राप्त होती है।

भक्तामर स्तोत्र की महिमा महनीय है। जो स्त्री-पुरुष श्रद्धा के साथ नित्य इस महान स्तोत्र का पाठ-पारायण करता है उसके हृदय का कमल खिल जाता है उसमे अनुस्यूत दिव्य प्रकाश विकीर्ण हो जाता है जिससे वह आध्यात्मिक विकास की ओर अग्रसर होता हे। आशय यह है कि भक्तामर स्तोत्र के नित्य पाठ से असाधारण आराधक को मोक्ष पद मिलता हे तो साधारण आराधक अपने को धन्य समझने लगता हे। इस प्रकार भक्तामर स्तोत्र के नित्य नियमित पाठ-पारायण करने से मुक्ति ओर भुक्ति दोनो प्रकार के सुख मिलते हैं अतएव विज्ञजनो को इस

ओर विशेष ध्यान देने की अपेक्षा है। कितने ही व्यक्ति यह स्तोत्र वाँचकर, पढ़कर उसका पाठ करते हैं, परन्तु कठस्थ श्लोको से पाठ करते समय जो भावोल्लास उमडता है, आनन्द आता है वह पढ़कर पाठ करने में नहीं आता। आचार्य मानतुग ने अपने इस स्तोत्र के अन्तिम छन्द में 'धत्ते जनो य इह कण्ठगतामजस्र' कहकर कठस्थ करने का सकेत दिया है। भावो की अभिवृद्धि और विशुद्धि मे यह स्तोत्र सहायक है।

इस स्तोत्र का पाठ चैत्र, ज्येष्ठ तथा आसाढ़ मास में नही करना चाहिए, शेष मे इसका पारायण शुभकर होता है।

उक्त महीनो मे शुक्ल पक्ष और पूर्णा तिथि को पाठ आरम्भ करने का निर्देश दिया गया है अर्थात् सुदी पाँचमी, दसमी, पूर्णिमा के दिन आरम्भ करना चाहिए। इस स्तोत्र का पाठ दिन में बारह बजे के पूर्व कर लेना चाहिए। सूर्योदय से पूर्व पाठ किया जावे तो वह सर्वोत्तम है। पाठ करते समय पूर्व या उत्तर दिशा की ओर मुख करके पद्मासन लगाकर बैठना चाहिए, मन मे भगवान ऋषभदेव का ध्यान करें या सामने चित्र आदि ऊँचे स्थान पर विराजमान कर लेना चाहिए। अकस्मात् महान उपद्रवो के प्रसग में शान्ति, तोष-सतोष हेतु इस स्तोत्र का अखण्ड पाठ भी किया जाता है। अखण्ड पाठ का क्रम व विधि विधान परम्पराओं में भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रचलित है।

कार्यसिद्धि या अन्यान्य उपायो के लिए मंत्र की साधना एक प्रयोग है जिसके द्वारा देवी-देवताओं को वश में किया जा सकता है। जो कार्य असम्भव हो वह मत्राराधना द्वारा सिद्ध-सभव हो जाता है। मत्र की साधना से साधक मन-वच-काय की शक्ति विकास कर सकता है। जब शुभ कर्मों का उदय हो तब यत्र-तत्र-मत्र लाभदायक सिद्ध होते हैं। अस्तु मत्र साधको को दान, दया, परोपकार, सदाचार आदि शुभ कार्यों द्वारा शुभकर्मों का संचय करते रहना चाहिए। साधक का अभीष्ट यह होना चाहिए कि सासारिक विषय-वासनाओं को छोड़ने तथा कर्मबन्धन से मुक्त होने के लिए मत्राराधन करे परन्तु यदि इस भूमिका को प्राप्त न कर सके और मात्र सासारिक मुसीवतों से छुटकारे के लिए, इष्ट मनोरथ सिद्धि के लिए ही मत्राराधन का आश्रय ले तो उसे इतना लक्ष्य अपने सामने अवश्य रखना चाहिए कि हमारे कृत्य से किसी के प्राणो का हनन न हो, कोई दुःखी न हो। मत्र सिद्ध करने का मूल उपाय श्रद्धा है। जो साधक मत्र देवता, मत्र तथा मत्र दाता गुरु के प्रति पूर्ण आस्थावान् होता है उसी की मत्र साधना सफल होती है। मत्र साधना एक विज्ञान है अस्तु मत्र साधक को इस विज्ञान से भली भाँति परिचित होना चाहिए ताकि वह अपनी साधना मे सफलता अर्जित कर सके।

श्लोक १ का यंत्र

यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधा-
दुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम् २

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ब्लूं नमः

श्रीश्रीश्रीश्री

ह्रीं

श्लोक २ का यंत्र

श्लोक ३ का यन्त्र

श्लोक ४ का यन्त्र

श्लोक ५ का यंत्र

श्लोक ६ का यंत्र

श्लोक ७ का यंत्र

श्लोक ८ का यंत्र

श्लोक ९ का यंत्र

श्लोक १० का यत्र

श्लोक ११ का यत्र

श्लोक १२ का यत्र

श्लोक १३ का यत्र

श्लोक १४ का यत्र

श्लोक १५ का यन्त्र

श्लोक १६ का यन्त्र

श्लोक १९ का यंत्र

श्लोक २० का यंत्र

मन्येवरंहरिहरादय एव दृष्टा

ॐ ह्रीं अर्हं णमो पण्ण सम-

कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि २१

श्लोक २१ का यंत्र

श्लोक २२ का यत्र

श्लोक २३ का यन्त्र



श्लोक २४ का यन्त्र

श्लोक २५ का यंत्र

श्लोक २६ का यत्र

श्लोक २७ का यत्र

श्लोक २८ का यत्र

श्लोक २९ का यत्र

श्लोक ३० का यत्र

श्लोक ३१ का यत्र

श्लोक ३२ का यत्र

श्लोक ३३ का यंत्र

श्लोक ३४ का यंत्र

श्लोक ३५ का यन्त्र

उन्निद्रहेमनवपङ्कजपुञ्जकान्ती

ॐ ह्रीं अर्हं णमो विप्पोसहिपत्ताणं ॐ ह्रीं

पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ

पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ३६

| ॐ | ह्रां | ह्रीं | श्रीं |
|---|---|---|---|
| म | ह्रां | ह्रीं | क्लीं |
| च | ह्रः | ह्रः | ह्रः |
| म | य | र | ह्रः |

श्लोक ३६ का यन्त्र

श्लोक ३७ का यंत्र

श्लोक ३८ का यत्र

श्लोक ३९ का यन्त्र

श्लोक ४० का यन्त्र

श्लोक ४१ का यंत्र

श्लोक ४२ का यत्र

श्लोक ४३ का यत्र

श्लोक ४४ का यत्र

उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्नाः
शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः।
मर्त्या भवन्ति मकरध्वजतुल्यरूपाः ४५

ॐ ह्रीं अर्हं णमो अक्खीणमहाण-
साणं ॐ नमो भगवती क्षुद्रोपद्रव
शांति कुरु कुरु स्वाहा।

| ॐ | ह्रीं | भ | ग |
|---|---|---|---|
| व | रा | य | थ |

श्लोक ४५ का यंत्र

श्लोक ४६ का यन्त्र

श्लोक ४७ का यंत्र

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां

श्लोक ४८ का यंत्र

## प्राचीन मंत्र-यत्र शास्त्रीय धारणाओं के अनुसार भक्तामर के ऋद्धि मंत्र-यत्र के फलितार्थ

काव्य : १ ऋद्धि एव मंत्र का सवा लाख जप, यत्र पास रखने से ऋद्धि, सुख, सौभाग्य प्राप्ति सर्व उपद्रव निवारण।

काव्य : २ सर्व विघ्न विनाशक।

काव्य : ३ शत्रु दृष्टि-बन्धक, शत्रुता भूलकर मैत्री करने लगता है।

काव्य : ४ जल-जन्तुओ का भय दूर होता है।

काव्य : ५ मन्त्रित जल पीने से आँखो की पीड़ा दूर होती है।

काव्य : ६ ज्ञान वृद्धि, बिछुड़े स्वजन मिलते है।

काव्य : ७ सर्प-विष उपशान्त होता है।

काव्य : ८ चर्मरोग मिटते है, शरीर पीडा दूर होती है।

काव्य : ९ दस्यु-तस्कर-चोर भयहारी।

काव्य : १० श्वान-विष विनाशक, पागल कुत्ते का जहर दूर होता है।

काव्य : ११ इष्ट व्यक्ति का नाम लेकर आह्वान करने पर शीघ्र मिलाप होता है।

काव्य : १२ उन्मत्त हाथी का मद दूर हो जाता है।

काव्य : १३ भूत-प्रेत, डाकिनी आदि का भय दूर होता है।

काव्य : १४ आँधी-तूफान आदि का भय मिटता है।

काव्य : १५ सौभाग्य लक्ष्मी वर्द्धक

काव्य : १६ प्रतिद्वन्द्वी के प्रभाव को रोकता है।

काव्य : १७ मन्त्रित जल से उदर व्याधि मिटती है।

काव्य : १८ शत्रु सैन्य स्तम्भन, न्यायालय आदि मे वाद-विजय।

काव्य : १९ दूसरो के टोना टोटका, उच्चाटन आदि मलिन तंत्र का प्रभाव रोकता है।

काव्य : २० १०८ बार जप कर जाने से विजय प्राप्त होती है।

काव्य : २१ इष्ट व्यक्ति को अनुकूल कारक।

काव्य : २२ व्यन्तर आदि बाधाओं का निवारक।

काव्य : २३ प्रेत बाधा दूर करता है।

काव्य : २४ भयंकर शिरःशूल निवारक

काव्य : २५ अग्नि उपद्रव शान्त करता है।

काव्य : २६ मस्तक वेदना, आधा शीशी पीड़ा दूर होती है।

काव्य : २७ मंत्र साधना में आत्म-रक्षक, जंगल आदि मे शत्रु का भय नहीं होता।

काव्य : २८ व्यापार मे वृद्धि।

काव्य : २९ विच्छू-विष निवारक।

काव्य : ३० शत्रु आदि का उपद्रव रोकता है।

काव्य : ३१ राज्य आदि मे यश प्राप्ति।

काव्य : ३२ संग्रहणी रोग पीडा निवारक, लक्ष्मी प्राप्ति।

काव्य : ३३ प्राकृतिक उपद्रव शान्त होते है। ज्वार निवारक।

काव्य : ३४ सम्पत्ति दायक।

काव्य : ३५ प्रकृति प्रकोप निवारक।

काव्य : ३६ मन्त्रित जल छिटकने से अग्नि उपद्रव शान्त होता है।

काव्य : ३७ दुष्ट वचन अवरोधक।

काव्य : ३८ मदोन्मत्त गज मद निवारक।

काव्य : ३९ सिह भय निवारक।

काव्य : ४० अग्नि भय निवारक।

काव्य : ४१ सर्प-विष निवारक।

काव्य : ४२ युद्ध-भय निवारक।

काव्य : ४३ पर शस्त्र का प्रभाव रोकता है।

काव्य : ४४ समुद्री तूफान आदि भय निवारक।

काव्य : ४५ दु साध्य रोग पीडाहारी।

काव्य : ४६ कारागार वधन-मोचक।

काव्य : ४७ सभी प्रकार के भय विनाशक।

काव्य : ४८ लक्ष्मी साभाग्यदायक।

## चतुर्थ अध्याय

# भक्तामर की महिमामयी प्रसिद्ध कथाएँ

# महिमामयी कथाएँ

भक्तामर स्तोत्र की प्रभावकता जग विश्रुत है। इस स्तोत्र की उत्पत्ति ही वड़ी चमत्कार पूर्ण घटना के साथ जुड़ी है। भक्त कविराज आचार्य श्री मानतुग सूरि का सम्पूर्ण शरीर पाँव से लेकर कठ तक लोहे की मजवूत शृखलाओ से वाध दिया गया था, फिर अधेरी कोठरी मे वद कर उसके दरवाजो पर अडतालीस ताले लगा दिये गये।

भक्तराज उसी वद कोठरी मे पाप शान्ति के साथ प्रभु भक्ति में तन्मय होकर प्रभु ऋषभदेव की स्तुति करते है। भक्ति के अपूर्व उद्रेक से आचार्य श्री के लौह-वधन टूटने लगते हैं, जव इस स्तोत्र का ४६वाँ श्लोक–आपाद-कण्ठमुरु-शृखल वेष्टितागा–का उच्चारण करते हैं तो समस्त वेडिया टूट-टूटकर विखर जाती है, ताले टूट जाते हैं, द्वार खुल जाते हैं और आचार्य श्री परम प्रसन्न मुद्रा के साथ काल कोठरी से वाहर पदार्पण करते है। यह अद्‌भुत चमत्कारपूर्ण घटना इस स्तोत्र की उत्पत्ति के मूल मे है।

इस के पश्चात् इस स्तोत्र की इतनी महिमा फैली कि भक्त जन जीवन की अनेकानेक समस्याओ, कठिनाइयों, विपत्तियो व आकस्मिक सकटो, रोग-भय-दरिद्रता आदि से छुटकारा पाने के लिए इस स्तोत्र का स्मरण करने लगे और उन्हें अप्रत्याशित चमत्कार अनुभव हुए। इन चमत्कारपूर्ण घटनाओ के कारण भक्तामर स्तोत्र सम्पूर्ण जैन समाज मे एक चमत्कारी स्तोत्र के रूप में प्रसिद्ध हो गया।

इस स्तोत्र की प्रभावकता वताने वाली इस प्रकार की घटनाओं, कथाओं को एक सूत्र में वाधने का सर्वप्रथम प्रयास आचार्य श्री गुणाकरसूरि ने किया है। उन्होने भक्तामर स्तोत्र की वृहद् टीका में भक्तामर कथाओ का सुन्दर सकलन किया है।

इस टीका को आधार मानकर श्वेताम्वर एव दिगम्वर परम्परा में भक्तामर स्तोत्र की प्रभावक कथाए काफी प्रसिद्ध हुई हैं। अनेक लेखकों ने इन कथाओं के पात्रो व स्थान आदि में किचित् परिवर्तन करके अपनी-अपनी परम्परा के अनुसार भक्तामर स्तोत्र की कथाएँ लिखी हैं। श्वेताम्वर-दिगम्वर–दोनो ही परम्पराओं के भक्तामर कथा साहित्य का पर्यालोचन करने से लगता है–कथा का कथ्य, तथ्य, और सत्य प्राय समान है। परन्तु उन पर परम्परा का रंग चढ़ता गया है।

मने यहाँ पर अनेक कथा ग्रथो का आधार लेकर अपनी शैली में भक्तामर स्तोत्र की चमत्कारी कथाएँ प्रस्तुत की हैं। जहाँ तक मेरा प्रयत्न रहा है, इनमें साम्प्रदायिक प्रभाव नहीं आने दिया है। कथा तथ्य को जैसा प्राप्त है उसी रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। पाठक के समक्ष कथासूत्र और श्लोक का चमत्कारी प्रभाव प्रस्तुत करने का शुद्ध प्रयत्न किया है। प्रस्तुत हैं यहाँ पर महिमामयी कथाएं।

## (१)
## सत्य की विजय

### श्लोक १-२

उज्जेन मे चोरी के लिए सोमदत्त विख्यात था। वह सिद्धहस्त चोर उस दिन बुरी तरह फँस गया। होनी को कौन टाल सकता है? कोतवाल ने उसे रगे हाथो जो पकड लिया था। अगले दिन राज्य दरबार मे उसे पेश किया गया।

राजा ने क्रोध से पूछा–"क्यो सोमदत्त! तुमने बहुत परेशान किया। आखिर आज हाथ आ ही गए न। सच बताओ कि तुमने चोरी का माल कहाँ छिपा रखा है?"

सोमदत्त पहुचा हुआ था। वह सोचने लगा कि किसी धनपति का नाम बतलाने से मे बच जाऊँगा। बस, फिर क्या था सोमदत्त के मुँह से नगरसेठ का नाम राजा के समक्ष निकल गया–"महाराज! नगरसेठ हेमदत्त।"

श्रेष्ठि हेमदत्त जिनभक्त, सुव्रती और ईमानदार थे। राजा का बुलावा पाकर श्रेष्ठि हेमदत्त दरबार मे पहुँचे। राजा ने पूछा–"श्रेष्ठिवर! यह चोर जो माल आपको देता रहा है वह कहाँ है?"

यह सुन नगरसेठ हक्के-बक्के से रह गए। अशुभ कर्मों का उदय जान नगर सेठ ने विनम्र शब्दो में कहा–"राजन्! इस व्यक्ति से मेरा कोई वास्ता नही है। इसको तो मने आज ही देखा है। इसके साथ मेरा कोई लेना-देना नहीं है, महाराज!"

जल मे खींची हुई रेखा के समान नगरसेठ के विनम्र-कथन का प्रभाव तो दूर अपितु चोरी करवाने का इल्जाम और उनके मत्थे मढ़ गया। क्यूंकि चोर सोमदत्त ने मिथ्या बोल कर राजा को जो आश्वस्त कर दिया।

वह नगरसेठ की ओर मुखातिब हो बोला–"सेठजी! आप डूबते हैं तो भले ही डूब जायँ लेकिन साथ मे मुझ गरीब को क्यों घसीटते हैं? मेरा परिवार तो भूखो मर जावेगा। जैसा आपने कहा, वैसा मैने किया। आप तो आज मुझे बीच मझधार में छोड रहे हैं। यही आपका इनाम है जो मुझे आप पहचानने से भी कतरा रहे हैं।"

होना क्या था? नगरसेठ के विनय ओर सच्चाई की कद्र नहीं हुई। वक्त बुरा जो आ पड़ा था। राजा ने नगरसेठ को सजा सुना दी। उसने अपने सिपाहियो को आज्ञा दी कि 'इस चोरो के सरदार को बियाबान जगल के अधकूप में डाल दो।' सिपाहियो ने वैसा ही किया।

अन्धकूप मे भूखे-प्यासे पडे सेठजी आत्मध्यान मे लीन हो गए। भगवान् आदिनाथ की मुग्धकारी झाँकी उनकी वद आँखो मे चित्रपट के समान झूलने लगी। उन्होने "भक्तामर स्तोत्र" के प्रथम-द्वितीय काव्यछद का मनोयोग पूर्वक उच्चारण-स्मरण किया। मत्र का प्रभाव होता है, सो हुआ। शासनदेवी चक्रेश्वरी अवतरित हुई। उसने नगरसेठ की सहायता की। अन्धकूप से नगरसेठ को वाहर निकाला। शासनदेवी ने नगरसेठ की प्रशसा की और कहा कि 'तुम कहो तो चोर और राजा को अच्छी सजा दे दूँ।'

नगरसेठ कर्मसिद्धान्त से परिचित था उसने कहा-"माँ! इसमे किसी का दोष नही है, यह मेरा दुर्भाग्य था जो मुझे भोगना था।"

तव राजा को वस्तुस्थिति का भान हुआ। उसने नगरसेठ को सम्मान दिया, क्षमा मागी ओर चोर को सजा सुनाई।

आखिर, सत्य की विजय हुई।

## (२)

## आस्था का फल

### श्लोक ३-४

मालवा की स्वस्तिमती नगरी मे श्रेष्ठि सुदत्त का हीरे-जवाहरात का व्यापार था। जैनधर्म ओर श्रावक-क्रिया मे आस्था रखने वाले श्रेष्ठि सुदत्त के घर के सामने से एक दिन पहुँचे हुए जैन साधु का गोचरी के लिए निकलना हुआ। श्रेष्ठि सुदत्त सपत्नीक गुरुवर्य को भोजनशाला मे ले गए एव यथाविधि आहार ग्रहण करवाया।

तत्समय भक्तिकाल का मध्य युग था। लोग मत्रो के वल पर चमत्कार प्रकट कर अपने-अपने धर्मों-सम्प्रदायो की महत्ता का प्रकाशन करने मे विश्वास रखते थे। जेन साधु भी समय की चाह से अनभिज्ञ न थे। वह भी तत्त्वज्ञान का पाठ शास्त्रीय ही नही अपितु प्रायोगिक रूप से ही पढ़ाते थे। श्रेष्ठि सुदत्त ने गुरुवर के समक्ष तत्त्वज्ञान श्रवण करने की विनम्र इच्छा प्रकट करते हुए कहा-"महाराज! मुझे कोई स्तोत्र सिखाइए जिसमे आपकी मगल स्मृति रहे आर मेरा जन्म सफल हो।"

गुरुवर ने महाप्रभावक 'भक्तामर स्तोत्र' के तृतीय-चतुर्थ काव्यछद श्रेष्ठि को मत्र-ऋद्धि-साधना विधि के साथ कठस्थ करा दिए। गुरुवर ने अपने गन्तव्य की ओर प्रस्थान किया।

दिन यूँ ही वीत गए। श्रेष्ठि का झुकाव व्यापार की ओर हुआ। फिर क्या था? जहाज पर माल लदवाकर चल दिया समुद्र के उस पार रत्नद्वीप की ओर। आधी

दूरी भी तय नहीं हुई थी कि होता क्या है कि यकायक समुद्र में जोरो का तूफान आता है, घटाएँ घिर आती हैं, जहाज डगमगाने लगता है। जहाज के सभी यात्री घबड़ा जाते हैं। सबको प्राणो की पड जाती है। लोगो को कोई युक्ति नहीं सूझती।

आखिर श्रेष्ठि सुदत्त ने यह सब परखा-देखा और मनोयोग से भक्तामर के तृतीय-चतुर्थ काव्यछद को जपना प्रारम्भ किया। शुद्धोच्चारण के एक-एक शब्द ने मानो सजीव प्रतिमा का निर्माण कर दिया। जैसा मैंने कहा कि मत्र का प्रभाव होता है, सो हुआ। शासनदेवी प्रकट हुई। वातावरण शान्त हुआ। जहाज निर्विघ्न तट की ओर बढ़ने लगा। देवी ने श्रेष्ठि की आस्था पर आशसा व्यक्त की और उसे 'चन्द्रकात मणि' प्रदान कर ज्यो ही वह अन्तर्धान हुई त्यों ही निरभ्र गगन मे चद्र मुस्कराने लगा। भोर हुई। सूर्य की रश्मियाँ समुद्र के शात जल पर बिखरी हुई थी। यात्री जहाज से उतरकर मुस्करा रहे थे मानो कुछ भी हुआ ही नही। यात्रियो ने श्रेष्ठि के समक्ष कृतज्ञता प्रकट की।

## (३)

## निर्धन से धनवान

### श्लोक ५

कोकन देश की सुभद्रावती नगरी के राज्यमत्री का सातवर्षीय बालक सोमक्रांति अध्ययनार्थ पाठशाला जाने लगा और थोडे ही समय मे वह व्याकरण, काव्य, न्याय, और धर्मशास्त्र में प्रवीण हो गया।

एक दिन सोमक्रांति ने बहुत से लडको को गिल्ली डडे का खेल खेलते देखा। उसका भी खेलने को मन आ गया। उसी समय आनन-फानन में सोमक्रांति ने एक दयालु लडके से डडा लेकर खेलना शुरू कर दिया। जीभर कर खेल भी न पाया था कि दैवयोग से डडा ही टूट गया। डडे के टूटते ही उसका दिल टूट गया। क्यूँकि वह दूसरे का ऋणी था। उसका मुख लज्जा से लाल हो गया।

दयालु लडके से उसने पूछा–'भाई! तुम डण्डा कहाँ से लाये हो? हम भी वहीं से तुम्हें ला देवे।' दयालु लडके ने देवल बढ़ई का घर बता दिया। सोमक्रांति ने देवल के घर जाकर उसे डण्डे के दाम दे दिए और अगले दिन तैयार कर रखने को कह दिया। सवेरा होते ही सोमक्रांति का पाठशाला जाना हुआ परन्तु बढ़ई के यहाँ से डण्डा लाने की चिन्ता बराबर बनी रही। वह भोजन के बहाने अवकाश लेकर देवल के घर पहुँचा। बढ़ई ने देखा कि उसके हाथ मे कपडे मे लिपटी कोई वस्तु है पुस्तक जैसी। वह बोला- यह हाथ मे क्या लिए हुए हो?''

सोमक्रांति ने कहा–' जैनधर्म का पवित्र ग्रथ भक्तामर स्तोत्र' है।''

वढ़ई वोला–"भई, इसमे से थोड़ा सा मुझे भी पढ़कर सुनाओ।"

सोमक्रांति ने भक्तामर का पाँचवाँ काव्यछद ऋद्धि-मन्त्र के साथ उसे सुना दिया। वढ़ई ने पूछा–'इस मत्र का फल क्या है?' सोमक्रांति ने कहा–'यह मत्र मनवांछित फल का दाता है।' वढई का मन किया–'भई, मुझे भी यह मत्र सविधि सिखा दो, कृपा होगी।' सोमक्रांति ने कहा–"पहले तुम श्रावक तो वनो।" देवल वढ़ई ने श्रावक का व्रत लेकर मत्र सीख लिया। फिर सोमक्रांति को उसने दो डण्डे वनाकर दिए और कहा कि एक से स्वय खेलना और दूसरा उस लड़के को जाकर दे देना जिससे तुमने लिया था।

एक दिन वढ़ई वन की गुफा में गया, पवित्र अग होकर सीखा हुआ मत्र सिद्ध किया। यकायक उसके सामने सिह पर विराजमान, हाथ मे चक्रधारण किए शासन देवी प्रकट हुई। देवी ने पूछा–"हे वत्स! तू क्या चाहता है?" देवल वढ़ई गरीव था सो उसके मुख से निकल गया–"माँ! मुझे धन चाहिए।"

शासनदेवी भक्तो की कामना पूर्ण करती है, वह वोली–"देखो वत्स! यहाँ से ईशान कोण मे जो पीपल का झाड है–उसके चारो ओर की भूमि को खोदो, उसके नीचे अटूट धन गढ़ा है, जाओ।" इतना कहकर इधर शासन देवी लोप हो गई उधर देवल को हीरे-जवाहरात प्राप्त हुए। निर्धन देवल अव धनवान वन गया।

सवसे पहले देवल ने निश्चय किया कि पहले मै एक उपाश्रय वनवाऊँ जिसमें साधु-साध्वी आकर धर्मध्यान कर सके तव मै इस धन का उपभोग अपने लिए करूँगा। लोगो को वहुत आश्चर्य हुआ। कल तक रोटी के लिए जो मोहताज था, आज इतने वैभव का स्वामी कैसे वन गया? उन्होने देवल से पूछा–"यह सव कैसे हुआ?" देवल सरल स्वभाव था उसने ज्यो का त्यो सारा वृत्तांत लोगो को कह सुनाया।

## (४)

## गोवर से गणेश

### श्लोक ६

काशी के राजा हेमवाहन के दो पुत्र हुए। वड़े का नाम भूपाल ओर छोटे का नाम भुजपाल रखा गया। वड़ा मन्दवुद्धि था और छोटा कुशाग्रवुद्धि। वारह वर्ष तक पंडित श्रुतधर ने भूपाल के साथ माथापच्ची की। सारा श्रम निरर्थक ही रहा। उसके मस्तिष्क में सिवाय गोवर के ओर कुछ नहीं भरा। श्रुतधर के पाण्डित्य ने जवाव दे दिया। हाँ, भुजपाल जरूर पिगल, व्याकरण, तर्क, न्याय, राजनीति, सामुद्रिक ज्योतिष, वैद्यक, शस्त्र-शास्त्र आदि सभी विद्याओं में पारंगत हो गया। एक ही गुरु के पढ़ाने ये दोनों शिष्य, एक ही पिता के ये दोनों पुत्र, किन्तु जमीन-आसमान का

अन्तर। यह विधि का विधान ही है कि एक का जीवन लोकप्रियता के पथ पर और दूसरे का परिहास और निन्दा के मार्ग पर।

भूपाल अपनी इस दशा से वडा ही खेद खिन्न रहने लगा। दिन रात उसे एक ही चिन्ता सताया करती–"मै भी सम्मान हासिल करूँ, सवका प्रिय वन सकूँ, इस दशा से मुक्त हो सकू।"

एक दिन उसने भुजपाल से सलाह ली और भक्तामर स्तोत्र का षष्ठ श्लोक ऋद्धि मत्र सहित सीख लिया। भूपाल के निराश मन मे यही एक मात्र आस की किरण थी। उसने विधिपूर्वक इस मत्र का सिद्धि अनुष्ठान किया। इक्कीसवे दिन भूपाल का साक्षात्कार शासनदेवी से हुआ। देवी माता वोली–"क्यो वेटे! मुझे क्यो याद किया?"

भूपाल वोला–"मॉ! मै विद्याविहीन हूँ, मेरा अज्ञान मिटाओ।"

देवी वोली–"एवमस्तु! तथास्तु! वेटे! तेरे मन की इच्छा पूर्ण होगी।" देवी से वरदान प्राप्त करते ही भूपाल धुरन्धर विद्वान हो गया। उस पर विद्या ऐसी प्रसन्न हुई कि काशी नगर मे कोई भी पण्डित उससे टक्कर नहीं ले सकता था। भूपाल अव गोवर से गणेश जो वन गया। सभी उसकी प्रशसा करने लगे।

## (५)

## मत्र की सिद्धि

### श्लोक ७

पटना नगर के राजा धर्मपाल न्यायशील और धर्मात्मा थे। उसी शहर मे वुद्ध नाम के धनपति रहते थे। उनके रतिशेखर नाम का रूपवान और विनयवान पुत्र था। वह एक उपाश्रय मे विद्याध्ययन करता था। उसने वहाँ से व्याकरण, कोप, सिद्धान्त और मत्र-तत्र में भी अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली।

पाटलिपुत्र मे धूलिया नाम का ख्यातिप्राप्त कुतापसी था। उसे वेताली विद्या सिद्ध हो गई थी। जिसे चरित्रभ्रष्ट भी प्राप्त कर लोगो की ऑखो मे थूल झोक सकते है। धूलिया भी ऐसा ही चरित्रहीन पाखण्डी था।

रतिशेखर पाखण्डी धूलिया के प्रपचपूर्ण कृत्य देखता और उसका भण्डाफोड करने के अवसर की ताक मे रहता। एक दिन रतिशेखर उपाश्रय मे अध्ययन मे सलग्न था। धूर्त धूलिया का एक प्रमुख चेला इस अभिप्राय से रतिशेखर के पास आ वठा कि वह विनयाविनत होकर उसे नमस्कार करे। नमस्कार की तो छोडो रतिशेखर ने उसे देखा भी नही। अपना अपमान समझ वह अपने वुद्धिशून्य गुरु के पास पहुँचा और उसने अपने अपमान की वात मिर्च-मसाला मिलाकर गुरु के समक्ष प्रस्तुत की। गुरु भडक उठा। गुरु ने ऑखे तरेरी ही थीं कि वेताली विद्या की

अनुचरी आ टपकी। वह वोली—"तापस! क्या कार्य है?" उच्च स्वर मे धूलिया ने कहा—"रतिशेखर का प्राणहरण।" अनुचरी ने कहा—"तापस! मै अभी जाकर धूल की वर्षा करती हूँ।"

वस फिर क्या था? ऑधी उठी—इतने जोरो की कि मकान के मकान उडने लगे। धूलि वर्षा से गगन प्रच्छन्न हो गया। रतिशेखर की विशाल सुदृढ अट्टालिका तो मानो धूल के समुद्र मे गोते लगा रही थी। रतिशेखर घर पर नही था।

जव उसने यह वृत्त सुना तो चुप न रह सका और आनन-फानन मे भक्तामर स्तोत्र के सप्तम श्लोक का स्मरण ऋद्धि मत्र जाप सहित किया। रतिशेखर ने अपने सामने शासन-देवी को वेताली विद्या की अनुचरी के सीने पर सवार होते हुए देखा। इतना ही नही उसने देखा धूल का भयकर चक्रवात धूर्त धूलिया की कुटिया पर मँडरा रहा है। मानो काल ने उसे अपना ग्रास वनाने का निश्चय कर लिया हो। धूलिया और उनके चेलो का सास लेना भारी हो गया। तव वह रतिशेखर के मत्र की सिद्धि से परिचित हुआ और अपने चेलो के साथ उसके समक्ष उपस्थित हो क्षमायाचना करने लगा।

(६)

## नाम से नहीं दाम से भी

### श्लोक ८

वसतपुर नगर मे धनपाल नाम का वेश्य रहता था। वह वडा धर्मात्मा था। उसकी पत्नी नाम के अनुरूप गुणवती थी। लेकिन धन और सन्तान का अभाव दोनो को सालता था। दैवयोग से उन्हे एक जैन साधु का सान्निध्य मिला। कहते है कि सत का सग सतोष देता है। हुआ भी यही। गुणवती ने जैन साधु से पूछा—"महाराज! मुझे कर्म ने दोनो प्रकार से मारा है। प्रथम तो निर्धनता पीस रही है दूसरे सतानहीनता मे दु खी रहती हूँ। क्या करूँ? कृपया इस सकट से उबरने का उपाय वताइए।"

जैन साधु दया के सागर थे। उन्होने धनपाल और गुणवती दोनो को भक्तामर स्तोत्र का अष्टम काव्य मत्र विधि समेत सिखा दिया। श्रद्धा भक्ति का परिणाम अवश्य मिलता है। यदि निष्काम भाव से मत्र का आराधन किया जाय तो कहना ही क्या? धनपाल ने पर्यंक आसन मे तीन दिन-रात मत्र की आराधना की तो शासनदेवी ने दर्शन दिए। देवी वोली—"कहो क्या चाहते हो, वत्स! तुम्हारी किसी एक चिन्ता को इस समय समूल समाप्त कर सकूँगी।"

धनपाल को गरीबी ने खूब सताया था उसने सोचा कि जीवन मिला है तो उसके लिए धन की आवश्यकता बहुत है। इसके आगे सतान का सवाल इतना [illegible] नही है। सो उसने धन की पूर्ति की बात देवी से कह डाली। देवी ने

'तथास्तु' कहा और विदा ली। अव धनपाल नाम से ही नही दाम से भी धनपाल हो गया।

## (७)

## आपकी कामना पूर्ण होगी

### श्लोक ९

भद्रा नगरी के राजा हेमव्रह्म अपनी आज्ञाकारिणी भार्या हेमश्री के साथ एक देन वन-क्रीडा को गए। वहाँ दोनो ने साधना मे निमग्न जैन साधु के दर्शन किए। वे दोनो उनकी शरण मे जा पहुँचे। ध्यानस्थ साधु को अपलक निहारते रहे और मन ही मन सन्तान प्राप्ति की कामना करने लगे। मन.पर्यवज्ञानी साधु जव साधना से मुक्त हुए तो राजा-रानी को अपने समीप वैठे पाया। उन्होने दोनो के मनोभावो को पढ़ा।

राजा-रानी अपनी वात कहने ही वाले थे कि साधु वोल उठे–"राजन्! सर्व-प्रथम अपने राज्य मे पचेन्द्रिय जीव हिसा पर प्रतिवध लगाइए। मूक पशुओ की दया, दु खी-दीन-अपगो को दान और त्यागी साधु सन्तो की सेवा का सकल्प लीजिए। दया, दान और सेवा ही दु खो से सागर से पार लगाती है। फिर जिनेश्वर देव की भक्तिपूर्वक भक्तामर स्तोत्र का नौवाँ काव्य केशर-चन्दन से लिखकर, उसे जल से धोकर श्रद्धापूर्वक पान किया करो। अवश्य ही आपकी कामना पूर्ण होगी।"

राजा-रानी ने साधु की वताई विधि को श्रद्धापूर्वक स्वीकारा और वदन कर राजमहल लौट आए। मत्र के प्रभाव का क्या कहिए? वक्त वदलते क्या देर लगती है? देखते-देखते वसत का आगमन हो गया। प्रकृति मे मादकता का समावेश हो गया। कामदेव रति के साथ क्रीडा कर रहे थे। मुकुलित पुष्पो पर भौंरे रसपान कर रहे थे। पक्षियो के युगल सरोवरो मे ही जीवन-रस प्राप्त कर रहे थे।

वस फिर क्या था? मधुऋतु के मधुरमिलन मे राजा-रानी अनुपम जीवन-रस से सिक्त हुए। नौ मास पश्चात् राजमहल मे वधाइयाँ गुजायमान हुईं। नगर मे आनद की लहर दौड गई। प्रियदर्शन की मधुर किलकारियो से राजा-रानी के हर्ष का ठिकाना न रहा।

## (८)

## धन की खोज

### श्लोक १०

सुभद्रा नगरी मे श्रीदत्त नाम का वेश्य धन के अभाव मे दु खी था। एक दिन जैन साधु गोचरी के लिए विचरण कर रहे थे। अवसर पाकर श्रीदत्त ने साधु

श्रीचरण पकड लिए और अपनी व्यथा कह डाली। तव उन कृपालु मुनिराज ने सर्वभयभजन भक्तामर का दसवॉ काव्य उसे सिखा दिया और विहार कर गए।

श्रीदत्त अपने साथियो के साथ धन कमाने परदेस निकला। वे लोग रास्ता भूल गए। श्रीदत्त ने दसवे काव्य का स्मरण किया और उसके प्रभाव से एक उपाश्रय दिखाई दिया। उसकी ओर चलते-चलते वे वहॉ पहुॅच गए।

उपाश्रय के पास मे एक जोगी वेठा हुआ था, सवको देखकर वोला–"तुम कौन हो? क्यो ओर कहॉ से आए हो?"

श्रीदत्त ने कहा–"मै सुभद्रा नगरी का निवासी श्रीदत्त हूॅ, गरीव हूँ अतएव धन की खोज मे निकला हूँ।"

जोगी वोला–"वच्चा! थोडी दूरी पर रसकूप है, उस रस को तॉवे पर डालने से वह कचन हो जाता हे। तू चल, उसमे से हम रस निकलवा देगे और वरावर वॉट लेगे।"

दु:खी क्या न करता? श्रीदत्त चल दिया, उस जोगी के साथ। वहॉ पहुॅचकर जोगी ने एक चौकी पर वेठा करके चारो कोनो पर रस्सी वॉध के और साथ मे खाली तुम्वी दे करके श्रीदत्त को कुएँ मे उतार दिया। तुम्वी भरकर श्रीदत्त ने खींचने को कहा ओर जोगी ने तुम्वी खींच ली। इसके वाद दूसरी तुम्वी लटका के जोगी ने आवाज दी कि एक तुम्वी ओर आने दो। श्रीदत्त ने वह भी भर दी।

तत्पश्चात चौकी पर श्रीदत्त को वेठा के खींचते हुए जोगी विचारने लगा कि इसे आधा रस देना पडेगा। क्यो न रस्सी काट कर रफूचक्कर हुआ जाय? जोगी ने ऐसा ही किया। वेचारा श्रीदत्त धडाम से कुएं मे गिर पडा।

विपत्ति के मारे श्रीदत्त ने भक्तामर के दसवे काव्य का जाप सविधि किया। दवी का आगमन हुआ ओर श्रीदत्त को उस रसकूप से निकाल कर और उसे अपार सम्पदा प्रदान करती हुई वोली–"श्रेष्ठिवर! लोभ मे आज व्यक्ति अधकूप मे पडा हुआ हे, उसका उद्धार तुम्हारे द्वारा सम्भव हे। तुम्हे एक कार्य करना होगा।"

जिज्ञासु श्रेष्ठि श्रीदत्त ने पूछा–"देवि! वह क्या?"

देवी वोली–"श्रेष्ठिवर! तुमने जिस मत्र ओर ऋद्धि के द्वारा भक्तामर के दसवे काव्य के आधार पर मुझे इस जगल मे स्मरण किया उसी प्रकार जनता-जनार्दन के सामने मुझे प्रकट करना होगा। साथ ही उन जेन साधु को भी नहीं भूलना है जिनसे यह तुमने विद्या पाई हे।" यह कहकर देवी अन्तर्धान हो गई।

## (९)

## खारा जल मधुर वना

श्लोक ११

सार्वभौम के राजकुमार तुग्ग ने कावेरी नदी के तट पर एक अत्यन्त रमणीय मन्दिर बनवाया। उसकी मनोहर क्यारियॉ, हरे-हरे अकुर, रग-विरगे फूल और

स्वादिष्ट फल, नन्दन वन की समता करते थे। जहाँ-तहाँ विश्रान्ति स्थल और चित्रशालाएँ कुबेर की कृति का दिग्दर्शन कराती थी।

सब कुछ होते हुए भी एक अभाव बगीचे की शोभा को खडित कर दे रहा था। 'सौ गुन पै इक औगुन फीको' वाली कहावत चरितार्थ हो रही थी। वह यह कि उस बाग मे जो बावडी थी उसका पानी बहुत ही खारा था मानो उसका सम्बन्ध 'लवणसागर' से हो।

राजकुमार तुरग ने मत्र, जत्र, तत्र, होम, आराधन आदि अनेक उपाय-उपचार किए किन्तु सफलता हाथ नही लगी। बिचारे तुरग दिन-रात इसी सोच मे डूबे रहते कि "कैसे दूर हो, इस बावडी के जल का खारापन?"

सयोग से एक जैनश्रमण के समक्ष अन्यान्य धार्मिक तात्विक प्रश्नो के उपरान्त खारे जल को मधुर बनाने का उपाय पूछा।

मुनिराज ने कहा—"महाप्रभावक भक्तामर के ग्यारहवे काव्य का पाठ ऋद्धि मत्र सहित करते हुए पाँच स्वर्ण कलशो मे बावड़ी से जल भरकर अभिमत्रित कीजिए। तदुपरान्त उसी अभिमत्रित जल का उपयोग कर शुद्ध पवित्र भोजन बनाइए तथा वह शुद्ध प्रासुक आहार त्यागी श्रमणो को दीजिए। निश्चय ही बावडी का जल मिष्ट और स्वादिष्ट हो जाएगा।"

राजकुमार तुरग ने जैन श्रमण द्वारा भक्तामर के ग्यारहवे काव्य की बताई गई मत्र विधि के अनुसार प्रयोग किया। मत्र के प्रभाव से वनदेवी प्रकट हुई, वह बोली—"वत्स! तेरी क्या इच्छा हैं?"

तुरग कुमार ने कहा—"माँ! मेरी बावडी का पानी मीठा हो जाए।"

'एवमस्तु' कहकर देवी अन्तर्धान हो गई।

खारा जल मधुर बन गया मानो उसका सम्बन्ध क्षीरसागर से हो गया हो। नगरवासी खुश हुए। तुरग कुमार की मनोकामना पूर्ण हुई।

## (१०)

## तद्रूप होने में सिद्धि

### श्लोक १२

अहिल्यापुर नगरी के राजा कुमारपाल थे। उनके मत्री विलामचन्द्र के पुत्र महीचन्द्र की घनिष्ठ मित्रता एक वेश्यपुत्र से थी। एक दिन दोनो ने वन मे तपस्या करते हुए जेन साधु के शुभ दर्शन किए। उनसे दोनो ने भक्तामर स्तोत्र के बारहवे श्लोक को ऋद्धि-मत्र सविधि सीख लिया।

वैश्यपुत्र ने तो पढ़ने के लिए पढ़ा था सो उसके हाथ तो केवल रटन्त मात्र पढ़ना ही रहा, परन्तु मत्री-पुत्र ने उन शब्दो मे अपनी तद्रूपता स्थापित कर ली। सात दिन तक सविधि बारहवे श्लोक के ऋद्धि-मत्र का आराधन किया। फलस्वरूप

शासनदेवी के द्वारा उसे कामधेनु नामक स्वर्गिक गाय प्राप्त हुई। जहॉ उसके दूध को छिडका जाता वही स्वर्ण का ढेर वन जाता। मत्री-पुत्र महीचन्द्र ने वही दूध अपने घर के चौके मे डाल दिया तो भॉति-भॉति के पकवान तेयार हो गए–हजारो स्त्री-पुरुपो को भोजन परोसा गया पर भण्डार भरपूर ही रहा। राजा कुमारपाल ने जव यह सुना तो महीचन्द्र की आस्था से वे प्रभावित हुए।

सचमुच पढ़ने मात्र से सिद्धि नही होती अपितु शव्दो के साथ तद्रूप होने मे सिद्धि निहित हे।

## (११)

## आस्था की प्रशसा

### श्लोक १३

अग देश मे चम्पावती नगरी के राजा कर्ण की रूपवती रानी विशनावती कुधर्म का आचरण करने वाली थी। एक दिन कपाली नाम का जोगी रानी के पास आया। उसने रानी को पिशाचिनी विद्या सिखा दी। रानी ने एक महीने के भीतर पिशाचिनी देवी को वश मे कर लिया।

चम्पावती नरेश के दरवार मे सुमति नाम के मत्री थे। वे जेन धर्म में आस्था रखते थे। एक दिन राजा ने राज्यसभा मे धार्मिक चर्चा छेड़ दी। मत्री की आस्था से राजा कुपित हो गए। रानी ने राजा के क्रोध को जाना तो वह भी आक्रोश मे आ गई। वह झट से श्मशान मे गई ओर पिशाचिनी को याद किया तो वह तत्काल प्रकट हो गई। रानी ने उमसे मत्री को सवक सिखाने की वात कह दी। तव पिशाचिनी अपने साथियो के साथ भयकर रौद्र रूप धर कर त्रिशूल, गदा, चक्र आदि लेकर सुमति मत्री पर प्रहार करने दौडी। अनेक विक्रियाएं करके डराया।

लेकिन जेनधर्म मे आस्था रखने वाले मत्री सुमति ने भक्तामर के तेरहवे काव्य का ऋद्धि-मत्र सहित आराधन किया जिससे शासन देवी ने प्रकट होकर पिशाचिनी आदि को पकडकर वॉध लिया ओर प्राण लेने को तत्पर हुई। लेकिन कृपालु सुमति के कहने से छोड दिया।

राजा ने मत्री की आस्था की प्रशसा की।

## (१२)

## प्रेम का सागर

### श्लोक १४-१५

[illegible]पुर नगर के राजा की भार्या का नाम कल्याणी था। कल्याणी धर्मात्मा और [illegible] थी। जिनेश्वर देव की आराधना और भक्तामर का पाठ उसका नित्य का [illegible]

एक दिन राजा वन क्रीडा के लिए गया तो वहा उसने किलोल कामिनी गोली को खाया। खाते ही उसने अपना रग जमाना प्रारम्भ कर दिया। आँखो मे मादकता टपकने लगी। एक अनोखी मदहोशी व्याप्त हो गई। राजमहल मे आकर वह पलग पर पसर गया। काम की अन्धता ने राजा के विवेक को हर लिया। वह कजरारी आँखो वाली वाँदी पर मर मिटा। महारानी कल्याणी के निश्चल निष्कपट अगाध प्यार को करारा धक्का लगा।

दूसरी रात्रि का दूसरा प्रहर हुआ। राजा-रानी दोनो एक ही पलग सोने की कोशिश मे थे पर दोनो की आँखो मे नीद कहाँ? रानी का हठ और नरेश की वासना मे सघर्ष जो था।

कल्याणी कटिवद्ध थी कि राजा पर-रमणी की छाया का पाप जब तक नही स्वीकारेगे तव तक मे उनसे किसी भी प्रकार का सम्वन्ध नही रखूँगी। दृढ सकल्प के आगे कामान्ध राजा की एक न चली। उसका काम क्रोध मे वदला गया। रानी का सकल्प भक्तिरस मे परिवर्तित हो गया। उसने भक्तामर स्तोत्र के चौदहवे और पन्द्रहवे काव्य की सविधि आराधना आरम्भ कर दी। खप्पर और कटार लिए 'शासन देवी' विकराल रूप धारण किए प्रकट हुई। राजा की शूर-वीरता गायब हो गई, वह डर गया। उसने परस्त्री-ससर्ग न करने का सकल्प लिया। देवी ने अभयदान दिया। राजा-रानी के हृदय मे प्रेम का सागर हिलोरे ले रहा था।

## (१३)
## मित्राबाई का संकल्प

### श्लोक १६

मडपपुर के राजा महीचन्द्र की पुत्री मित्रावाई का आरम्भ से ही आध्यात्मिकता की ओर झुकाव था। राजा को अपनी पुत्री का धर्म के प्रति आकर्षण देख प्रसन्नता हुई। उन्होने श्रीमती नाम की साध्वी के पास विद्याध्ययन हेतु उसे भेजा। वहाँ मित्रा ने धर्म के गूढ़ रहस्यो को समझा और सोचा कि जीवन मे धर्म को समझना उतना मूल्यवान नही जितना उस पर आचरण करना। विद्याध्ययन के उपरान्त आशीषवचन देते हुए साध्वी श्रीमती ने मित्रावाई को सकल्प दिया-'कि त्यागी तपस्वी श्रमणो के पवित्र दर्शन के वाद ही भोजन करोगी।'

समय वीता। मित्रावाई के विवाह की दुन्दुभि वज उठी। उसका विवाह क्षेमकर नाम के धर्मपरायण विद्वान धनपति से हुआ। जब मित्रावाई ससुराल पहुँची तो उसकी सास ने भोजन के लिए वुलाया। मित्राबाई के सकल्प को सभी ने जाना। क्षेमकर पत्नी की प्रतिज्ञा से प्रभावित हुए। उन्होने योगासन मे वेटकर भक्तामर

स्तोत्र के सोलहवे काव्य का सविधि आराधन आरम्भ किया। चतुर्भुजी देवी प्रकट हुई वह बोली—"कुमार! तुम्हारी इच्छा पूर्ण होगी।"

देखते ही देखते दो मासक्षमण के तपस्वी सत भिक्षार्थ उनके भवन मे पधारे। पति-पत्नी के सकल्प और आस्था का सर्वत्र बखान होने लगा।

## (१४)
## सत्सगति का फल

### श्लोक १७

चक्रेशपुर के राजा नरसिह का पुत्र रत्नशेखर दुराचारी और नीच वृत्ति का था। राजा ने उसका विवाह कल्याणश्री नाम की राजकन्या से कर दिया। वह जैन कुलोत्पन्न सदाचारिणी विदुषी रमणी थी। भक्तामर का पाठ ऋद्धि मन्त्रो सहित करने का उसका नित्य का कर्म था।

रत्नशेखर की दोस्ती एक ऐसे जोगी से हो गई जो कहने को तो तपस्वी जटाजूटधारी था लेकिन वह विविध चमत्कारो की योग्यता का स्वाग करने वाला था। रत्नशेखर को उस जोगी ने एक चमत्कार दिखाया—अपने हाथ की अगूठी निकालकर सामने फेकते हुए कहा कि मेरा चमत्कार देखो, मै अचेतन को चलाये देता हूँ। देखते क्या है कि योगी के मत्र फूकते ही अगूठी चलने लगी। रत्नशेखर की जोगी पर बडी श्रद्धा हो गई।

कल्याणश्री ने अपने पतिदेव की दुरास्था को जाना। उससे यह देखा न गया। असल मे कुसगति और सत्सगति का सघर्ष छिड गया।

एक दिन कल्याणश्री ने उस जोगी को अपने घर बुलाया और भोजनोपरान्त जल को भक्तामर स्तोत्र के सत्रहवे काव्य की ऋद्धि और मत्र से मत्रित किया और उस मत्रित जल को स्वय पीने के पश्चात् उच्छिष्ट जल पीने के लिए पाखडी जोगी के सामने रख दिया। जोगी उस जल को पीकर भोजन समाप्त कर ही रहा था कि शासनदेवी आकर सामने खडी हो गई। उसने एक अगूठी जोगी को देकर कहा कि 'उडाओ इसे ।' परन्तु कीलित अगूठी काहे को उडती? अब देवी ने स्वय वह उस मुद्रिका आकाश मे फेकी तो जहाँ पर वह गिरी वहाँ एक सुन्दर भव्य उपाश्रय दृष्टिगोचर हुआ। गाधारी देवी के इस अनोखे चमत्कार को देखकर जोगी देवी के चरणो मे गिर पडा और हमेशा-हमेशा के लिए दूसरो को बगुल मे फँसाने

## (१५)
## जड़मति से सुजान

### श्लोक १८

कुलिग देश के बरबर नगर मे राजा चन्द्रकीर्ति राज्य करते थे। उनके मत्री सुमतिचन्द्र का स्वर्गवास हो गया। राजा ने उसके पुत्र भद्रकुमार को बुलाया और कहा कि तुम अपने स्वर्गीय पिता की पदवी अगीकार करो। भद्रकुमार निरक्षर था। लिखना-पढ़ना तक न आता था। वेचारा बडा ही लज्जित हुआ और राजा को अपना अभागा दोष कह सुनाया कि मेरे मत्री पद से मेरी ही नही आपकी भी जग हँसाई होगी। राजा ने कहा-"भद्र! बिना विद्या के जीवन बेकार है। तुम्हे इस ओर ध्यान देना चाहिए।"

भद्रकुमार अत्यन्त लज्जित होकर दरबार से तो चला आया, परन्तु उसके चित्त मे विद्याधन कमाने की गहरी चिन्ता हो गई। एक दिन उसने एक जैनश्रमण के समक्ष अपने चित्त का क्लेश कह सुनाया। कृपालु साधु ने भक्तामर का अठारहवाँ काव्य विधि समेत सिखा दिया। भद्रकुमार ने अन्न-जल त्याग कर तीन दिन तक वडी तपस्या की और मत्र सिद्ध किया। परिणाम यह हुआ कि शासन देवी प्रकट हुई और कहने लगी-"भद्र! क्या इच्छा है?" भद्रकुमार ने कहा-माँ! वरदान दीजिए कि मे विद्वान बनूँ।" विद्या का वरदान देकर देवी निज स्थान को प्रस्थान कर गई।

मत्री-पुत्र भद्रकुमार अत्यन्त प्रसन्न होकर घर को चले आए। राजा ने भरे दरबार मे इतनी जल्दी विद्वान होने का कारण पूछा तो भद्रकुमार ने विनयपूर्वक कहा-"राजन्! जेनधर्म के प्रभाव से वडी-वडी ऋद्धियाँ और महान ज्ञान प्राप्त होता हे फिर इस शास्त्रीय ज्ञान की क्या विसात?" भद्रकुमार जडमति से सुजान वन गए।

## (१६)
## अपने किए का फल

### श्लोक १९

हस्तिनापुर के राजा शूरपाल थे। उन्हीं दिनो वहाँ देवल नाम के नगर सेठ भी रहते थे। उनके यहाँ हीरा, जवाहरात का व्यापार होता था। नगरसेठ के सुखानन्द नाम का एक पुत्र था। नगर सेठ ने उसे अन्यान्य धर्मशास्त्रो के अतिरिक्त भक्तामर स्तोत्र का भी अध्ययन कराया था। एक दिन राजा शूरपाल को वहुत से गहने वनवाने की आवश्यकता पडी सो उन्होने प्रिय सुखानन्द कुमार को बुलाया और

सोना, चॉदी और वहुत से हीरा माणिक सव अच्छा सच्चा माल उन्हे सम्हला दिया। सुखानन्द कुमार ने वह सव माल सुनार को राजा के ही सामने सौप दिया।

सुनार के मन मे खोट था। उसने सारे आभूषण नकली गढ़ डाले। राजा ने जव तलव किया तो सुनार ने सुखानन्द का नाम ले दिया कि इन्होने ही मुझे ऐसा करने को कहा था।

राजा ने तुरन्त ही सुखानन्द कुमार को वुलवाया ओर डॉट-फटकार लगाई। राजा ने सुनार को तो विदा कर दिया और सुखानद को जेल मे कैद कर देने का हुक्म दे दिया–"जव तुम मेरे रतन-हीरे जवाहरात लौटा दोगे तव मे तुम्हे छोड दूॅगा।"

विना अन्नाहार ग्रहण किए कारागार मे पडे हुए सुखानद को पूरे वहत्तर घण्टे हो गए पर धीर-वीर सुखानद का हृदय रचमात्र भी क्षोभित नही था। चूकि उसे भक्तामर स्तोत्र पर अटल आस्था थी। वह सोलह आने सचाई पर था, फिर डर काहे का? दूध का दूध और पानी का पानी सव स्पष्ट हो जाएगा।

उसने भक्तामर का उन्नीसवॉ काव्य ऋद्धि-मत्र के साथ आराधन करना आरम्भ कर दिया। कारागार की काली कोठरी मे रात्रि को जव वह सो रहा था तव शासनदेवी आकर उसे निद्रावस्था मे ही उसके घर रख आई।

अगले दिन राजा शूरपाल ने देखा कि कारागार का दरवाजा खुला पड़ा हे आर सुखानन्द कुमार अपनी जवाहरातो की दुकान पर निश्चिन्त वेठे हुए व्यापार मे मग्न ह। राजा समझ गया कि उसने पिछली रात के अन्तिम प्रहर मे जो स्वप्न देखा था वह इसी रूप मे साकार हुआ हे। वस फिर क्या था? राजा शूरपाल तो जनधर्म का अटल श्रद्धानी हो गया ओर सुनार को अपने किए का फल मिल गया।

कहते ह– देवता भी धर्मात्माओं के दास वनकर रहते हे।

## (१७)

## विश्वास का फल

### श्लोक २०

रत्नावती नगरी मे अडोल नाम के एक सेठ रहते थे। उनका जेनधर्म पर दृढ़ विश्वास था। उनके एक पुत्र था। वह स्वरूपवान था ओर था शरीर से सुदृढ भी, परन्तु जैनधर्म मे उसकी किंचित् भी श्रद्धा नही थी। विष्णु मे गहरी अभिरुचि होने से पिता ने उसका नाम विष्णुदास रख दिया था।

"वत्स विष्णु! प्रत्येक सीढी पर पाँव रखकर महल मे चढ़ना युक्ति सगत है, पर एकदम कई सीढियाँ लाघने से मनुष्य मुँह के वल गिरता है। तुम्हारे अन्दर की आत्मा अभी सत्य के प्रकाश की ओर नही बढी और तुम अन्तिम उपदेश की ओर बढ रहे हो। गृहस्थ का सबसे बडा पुण्य कार्य वही है, जिसमे उसकी स्वय की आत्मा धिक्कारे नही, वरन् सहमति दे।"

विष्णुदास ने कहा–"महाराज! कोई चमत्कार दिखलाइए, जिससे मेरा धर्म और साधुओ पर विश्वास हो?"

जेनमुनि ने भक्तामर का बीसवाँ काव्य मय ऋद्धि मत्र के सिखलाकर कहा– "वत्स! तुम सभी व्यक्तियो के समक्ष अपना मनोरथ सिद्ध करो, जिससे सभी व्यक्तियो का धर्म मे विश्वास हो सके।"

रतनावती के राजा की सम्पूर्ण प्रजा दरबार मे उपस्थित थी। विष्णुदास ने मधुर कठ से भक्तामर स्तोत्र का बीसवाँ काव्य पढना शुरू किया। तत्काल ही शासन देवी वहाँ उपस्थित हो गई। देवी ने विष्णुदास को अष्ट सिद्धियाँ प्रदान की।

राजा ने विष्णुदास पर बडी प्रसन्नता प्रकट की। उन्हे अपना आधा राज्य दे दिया ओर अपनी प्यारी कन्या उन्हे व्याह दी।

## (१८)

## संकल्प की शक्ति

### श्लोक २१

मालवा की विशाला नगरी मे नामचन्द्र नाम के एक नगरसेठ रहते थे। पुण्योदय से उन्हें एक पुत्र हुआ। नाम जिसका श्रीधर था। जब वह विद्याध्ययन के योग्य हुआ तव उसने गणित, साहित्य, छन्द, व्याकरण आदि विद्याओ के अतिरिक्त मनवाछित फलदायक श्रीभक्तामर स्तोत्र का भी अध्ययन किया।

समय आने पर श्रीधर का विवाह रूपश्री से हुआ। रूपश्री सुशील और धर्मपरायणा थी। उसने एक सकल्प ले रखा था कि मै जिन वदना किए बिना अन्न-जल ग्रहण नही करूँगी।

एक दिन प्रात काल से ही वर्षा की घनघोर झडी लगी हुई थी। नगर मे चारो ओर निस्तब्धता थी। लोग छुट्टी मना रहे थे। श्रीधर के परिवार वाले मध्यान्ह मे भोजन कर चुके थे। लेकिन रूपश्री अभी तक निराहार थी। घनघोर सघन वर्षा मे नगर से पाँच मील दूर देवालय मे स्थित जिनदेव की आराधना करना टेटी खीर थी। सास ने आकर आश्वासन दिया–"बहू! शाम को जिनालय चलेगे। अभी इस स्थिति मे चलना असम्भव है।"

जेनधर्म मे आस्था रखने वाले प्राय अपने सकल्प को प्राणप्रण से निभाते हैं। हुआ भी यही। सात दिन तक लगातार मूसलाधार वर्षा होती रही। नगर ने वाढ़ का रूप ले लिया। रूपश्री के निर्जल उपवास ने उसकी कुन्दन सी काया को मलिन वना दिया लेकिन उसके मुख पर अद्भुत आभा विकीर्ण थी। सकल्प मे शक्ति जो होती हे। वाढ़ से पीडित व्यक्ति निरुपाय हो अपने-अपने इष्टदेव का स्मरण कर रहे थे। श्रीधर को भी प्रकृति के प्रकोप के आगे सिर झुकाना पड़ा। उसने भक्तामर स्तोत्र का इक्कीसवॉ काव्य पढ़ना शुरू किया। उसे आनन्दानुभूति हो रही थी। वह वार-वार दुहरा रहा था। वस फिर क्या था शासनदेवी प्रकट हुई—"वत्स! तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।"

देखते क्या हैं कि श्रीधर रूपश्री के साथ वायुरथ पर चढ़कर जिन वदना कर रहे हैं। रूपश्री इक्कीसवे काव्य को पढ रही है। श्रीधर इस चमत्कार से हतप्रभ हुआ। वह धर्म के प्रति पूर्ण श्रद्धावान हो गया।

## (१९)

## चण्डी ने क्षमा मॉगी

### श्लोक २२-२३

उज्जेन के राजा श्रीचन्द्र जेनधर्मी, न्यायशील, प्रजापालक थे। उन्होने मत्री का काम नगरसेठ मतिसागर को सौंप रखा था। मतिसागर अनुभवी ओर विद्वान थे। उनके एक पुत्र था महीचन्द्र। एक दिन राजा ने महीचन्द्र को वच्चो के साथ खेलते देखा तो वह मतिसागर से वोले—"मत्री महोदय! महीचन्द्र के लिए विद्याधन की व्यवस्था कीजिए।"

मत्री ने महीचन्द्र को राज्य के वडे गुरु को सौंप दिया। महीचन्द्र थोडे ही दिनो मे निपुण हो गया। उसने लौकिक ओर धार्मिक दोनो प्रकार की योग्यता प्राप्त कर ली आर भक्तामर का तो वह पूरा ही भक्त हो गया था।

जव महीचन्द्र पढ-लिखकर होशियार हो गया ओर राजा के दरवार मे गया तो राजा ने अपने पास वेठाकर कुशल-क्षेम पूछी। महीचन्द्र की विद्या मे उन्नति को देखकर प्रसन्नता के साथ उन्होंने वहुत सी भेट दी।

समय यूँही वीत रहा था कि एक दिन राजा श्रीचन्द्र के कानो मे यह चर्चा सुनाई पडी कि नगर के चण्डीमठ मे एक जैनमुनि पर घोर उपसर्ग किया जा रहा है। उन्होंने तत्काल महीचन्द्र को वुलाया आर उपद्रव शान्त करने के लिए उससे कहा।

वह बोली–"वत्स! क्या चाहते हो?" महीचन्द्र ने कहा–"देवी माँ! मै अपने लिए तो कुछ नही चाहता, परन्तु यहाँ का वातावरण शान्त अवश्य चाहता हूँ जो कि इस मठ मे निवास करने वाली पिशाचिनी चण्डिका के कारण क्षुब्ध है।" देवी बोली-"अच्छा, वत्स! देखो, मै इसे कैसे सवक सिखाती हूँ।"

देखते ही देखते देवी ने अपनी दोनो आँखे बन्द कर ली। ओठो पर मन्द-मन्द मुस्कान लाकर दाहिना हाथ ज्यो ही ऊपर उठाया कि चण्डीदेवी के हथियार अपने आप हाथो से गिरने लगे। मायावी भूत-प्रेत तथा सिह, चीते, व्याल आदि सभी हिस्र पशु भाग खडे हुए।

अन्त मे चण्डीदेवी उस शासन देवी के चरण-शरण मे गिरकर गिडगिडाने लगी–

"देवि! मुझ हतभागिन को क्षमा करो।" देवी ने जैन साधु की ओर संकेत करके कहा कि उनसे ही तुम क्षमा माँगो।

कृपालु जेनमुनि ने चण्डी को माफ किया।

राजा ने महीचन्द्र को गले से लगा लिया और वडी प्रशसा की।

## (२०)

## यह कैसा फाग?

### श्लोक २४-२५

कोशाम्वी के राजा जितशत्रु विलासी और कामुक थे। उन्होने छत्तीस राजकुमारियो से विवाह रचाया था। एक दिन की बात। वसत का सुहावना समय था। कोयल की कूक और सुगन्ध पवन के झौंके कामियो को उन्मत्त करते थे। राजा जितशत्रु को भी वनक्रीडा की सूझी और अपनी सभी रानियो को लेकर वाटिका पहुँचे। उनकी रसीली रानियो ने खूव फाग मचाई। अवीर, गुलाल, चन्दन, केशर, कज्जल, कुकुम की खूव भरमार की और राजा को अच्छी तरह फाग मे राजी किया। उन्हें अपनी पिचकारी का निशाना वनाया और ऊपर से फगुवा का दावा किया। परन्तु राग के विना फाग कैसा? वस फिर क्या था सगीत की झकार और रानियो की थिरकन ने राजा का मन मोह लिया।

राजा वन क्रीडा से लौट रहे थे। ऐसे मे वनदेवता ने रानियो को विह्वल कर दिया। सवकी सव सुध वुध खो वैठीं। उन्मत्त रानियाँ राजा को मदोन्मत्त कर रही थी। राजा अवाक् था। रानियो की इस दशा से वह परेशान था। करे तो करे क्या?

यकायक राजा देखते क्या है कि दूर अमुक वृक्ष के तले एक जैन साधु विराजमान हैं। राजा सभी रानियो को उनके पास ले गए। साधु से रानियो की

उन्मत्त दशा को दूर करने का राजा ने निवेदन किया। साधु ने भक्तामर के चौवीसवे और पच्चीसवे काव्य का आराधन करते हुए मत्र फूका। रानियाँ पूर्व दशा मे लौट आई। सवकी सब मन ही मन लज्जित हुई।

## (२१)

## क्या यह मेरा घर है?

### श्लोक २६

वरारा नगरी मे धनमित्र नाम का एक भिखारी रहता था। गरीवी के कारण वह झूठन भी खाने लगा था फिर भी उसका पेट नही भरता था। कहते है कि घूरे के भी दिन फिरते हैं। फिर अभागे धनमित्र के दिन क्यो न फिरते? उसे एक जैन साधु के दर्शन हुए। उनसे अपनी व्यथा कही। कृपालु श्रमण ने भक्तामर का छब्बीसवाँ काव्य सिखा दिया। उसने शरीर शुद्धि कर छब्बीसवे काव्य का आराधन सविधि शुरू किया। ज्यो ज्यो रात्रि गिरती जाती थी त्यो त्यो धनमित्र को मत्र जपने मे रस आ रहा था। जव जप पूरा हुआ तव एक देवी नागकुमारी धनमित्र के शील की परीक्षा लेने के लिए सुन्दर रूप धारण कर प्रस्तुत हुई। नागकुमारी ने धनमित्र के साथ नाना चेष्टाएँ कीं, परन्तु सव व्यर्थ हुईं। उसके स्थिर वित्त को चचल न वना सकी। वह परीक्षा मे सफल हुआ।

तव फिर शासनदेवी प्रकट हुई उसने धनमित्र से पूछा—"वत्स! क्या व्यथा है?" धनमित्र वोला—"माँ! मेरा दु ख दारिद्र्य दूर करो।" देवी बोली—"तथास्तु वत्स! तेरे मनोरथ पूर्ण होंगे।"

धनमित्र घर आया तो घर का कुछ निराला ही हाल देखा। वह पहचान ही न सका कि यह मेरा घर है। अपनी सौभाग्यवती स्त्री को सजधज मे देखा तो धनमित्र ठगा सा रह गया। अव धनमित्र से धन ने पूरी मित्रता कर ली थी।

## (२२)

## राजा की श्रद्धा जगी

### श्लोक २७

चन्द्रकान्तपुर के राजा हरिश्चन्द्र की भार्या का नाम चन्द्रमती था। दोनों को बस एक अभाव सालता था कि उनके कोई सतान न थी। उन्होने क्या-क्या यत्न नहीं किए। लेकिन कोई लाभ नही हुआ। राजा-रानी पेशेवर व्यक्तियो मे अपना

करने लगे। शासनदेवी प्रकट हुई उन्होने वरदान दिया। राजा को महाप्रतापी पुत्र प्राप्त हुआ। पाँच वर्ष बाद फिर वही जैन साधु पधारे। राजा-रानी दलवल सहित दर्शनार्थ पहुँचे। और उनसे पुत्र के लिए आशीष माँगा।

## (२३)
## रूपकुण्डली

### श्लोक २८

धरापुरी नगरी के राजा पृथ्वीपाल के सात पुत्र और एक कन्या थी। कन्या वडी ही रूप और लावण्य सम्पन्न थी। नाम उसका रूपकुण्डली था। एक दिन वह सखियो के साथ वाटिका मे गई तो वहाँ जैन साधु को देखा। रूप और सत्ता के अभिमान मे आकर रूपकुण्डली ने उस तपस्वी साधु को भला-बुरा कहा।

परिणाम यह हुआ कि थोडे दिनो मे वह रूपकुण्डली से कुरूपकुण्डली बन गई। उसे कोढ हो गया। शरीर के रोम खिर गये, हाथ पाँव गल गये और बडी दुर्दशा हुई। वह रोती, विलखती पश्चात्ताप करती हुई तपस्वी साधु के पास गई।

साधु दया के सागर थे। उन्होने भक्तामर का अट्ठाइसवाँ काव्य सिखा दिया। रूपकुण्डली साधु महाराज को वदन कर घर को चली आई और तीन दिन-रात काव्य की आराधना की। फलस्वरूप उसका सारा शरीर पुन कुन्दन सा चमक उठा। राजा-रानी की खुशी का ठिकाना न रहा। उन्होने रूपकुण्डली का विवाह सद्गुणी राजपुत्र से करना चाहा लेकिन रूपकुण्डली नाशवान शरीर का सही उपयोग समझ चुकी थी। उसने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया।

## (२४)
## निन्दा का फल

### श्लोक २९

अलकापुरी के राजा जयसेन सच्चे जेन धर्मी और पापभीरु थे। उनकी भार्या जया जेनधर्म मे आस्था न रखने वाली, काम-अग्नि से सन्तप्त रहने वाली मिथ्यात्विनी थी। सयोग से एक जैन मुनि का पधारना हुआ। राजा उनकी भक्ति मे लग गया। लेकिन रानी ने मुनि की निन्दा की। राजा के सामने तो वह मधुरभाषिणी थी परन्तु अन्तरग मलिनता से अनुप्राणित थी। तीव्र पाप का फल भी कभी-कभी शीघ्र उदय हो जाता है। सो हुआ। रानी कुष्ठ व्याधि से व्यथित हो गई। शरीर से दुर्गन्ध निकलने लगी। रानी भी मन मे समझ गई कि यह साधु-निन्दा का फल है। राजा के परामर्शानुसार वह प्रायश्चित्त करने साधु के पास पहुँची। मुनि राज ने भक्तामर स्तोत्र का उन्तीसवाँ काव्य मत्र सहित विधिपूर्वक अनुष्टान करने

की प्रेरणा दी। रानी ने ऐसा ही किया। फलस्वरूप उसका शरीर पूर्ववत् गुलाव की तरह सुन्दर वन गया।

## (२५)
## ग्वाला राजा बना

### श्लोक ३०-३१

श्रीपुर के राजा रिपुपाल की चार रानियॉ थी जो गृहस्थ धर्म मे वडी सावधान थीं। उनके यहाँ एक ग्वाला रहता था जो उनके गाय, भैस आदि की टहल किया करता था।

एक दिन वह ग्वाला जगल मे गया। वहाँ उसे एक परम जैन मुनि के दर्शन हुए। उसने मुनिराज की सभक्ति सेवा की। मुनिराज उसकी भक्ति से प्रभावित हुए। उन्होने भक्तामर के तीसवे और इकतीसवे काव्य को मत्र ऋद्धि के साथ समझा दिया। देखिए मत्र का प्रभाव कि ग्वाला श्रीपुर का राजा वन गया।

हुआ यह कि राजा रिपुपाल के कोई सतान न थी। उनकी मृत्यु के उपरान्त हाकिम लोग आपस में लड-झगड रहे थे। राज्य की सत्ता को हथियाने का प्रयास कर रहे थे। ऐसे मे राजपरिषद् के वरिष्ठ सदस्यो ने एक राय होकर राजा का हाथी सजाया और उसे पुष्प माला दी। हाथी द्वारा माला को ग्रहण करने वाला व्यक्ति ही राज्य गद्दी पाने का अधिकारी होगा। यह घोषणा नगर भर मे करा दी गई। सयोग की वात उस दिन ग्वाला जगल से जानवरो सहित लौट रहा था। भक्तामर के तीसवे और इकतीसवे काव्य को गुनगुनाता जा रहा था। वस हाथी ने उसके गले मे माला डाल दी। ग्वाला राजा वन गया।

## (२६)
## जेसा नाम वेसा रूप

### श्लोक ३२-३३

उज्जैन के राजा रतनशेखर वडे नीतिवान और प्रजापालक थे। उनकी पटरानी का नाम मदनसुन्दरी था। नाम उनका सुन्दरी जरूर था लेकिन देह कुरूप पाई थी। सिर पर खडे भूरे वाल, छोटा-सा ललाट, चपटी धन्सी हुई नाक, ओठो से वाहर

एक दिन राजा रतनशेखर चिन्तामग्न थे कि उनके बाल सखा का आना हुआ। बाल सखा ने पूछा "राजन्! चिन्ता का क्या कारण है?" राजा ने रानी मदनसुन्दरी की सब दशा उसे कह सुनाई। तब फिर बाल सखा ने जैनमुनि के पास जाने का सुझाव दिया। राजारानी जैनमुनि के पहुँचे और अपनी व्यथा कह डाली। मुनिराज ने रानी को बत्तीसवाँ और तेतीसवाँ काव्य सविधि सिखा दिया। रानी ने विधिपूर्वक जाप किया और जैसा नाम था वैसा ही उसका रूप हो गया। साथ ही सारे रोग नष्ट हो गये।

## (२७)
## राजा का रोग दूर हुआ

### श्लोक ३४-३५

बनारस के राजा भीमसेन न्यायप्रिय थे। असाता कर्मों का उदय हुआ कि राजा भीमसेन एक रोग से पीडित हो गए। जिससे उनका शरीर नितान्त दुर्बल हो गया। कांति उड गई। अस्थि चर्म सूख गए। देखने मे बहुत डरावने दिखने लगे। भूख का पता नहीं था। नाना प्रयत्न किए गए पर व्यर्थ हुए। राजा की यह दशा देखकर रानी रो पडी। उन्हें साहस न रहा। मत्रीगण आए, रानी को धीरज बँधाया।

सयोग से एक दिन साधु महाराज पधारे। राजा उनके श्रीचरण मे पहुँच गए। अपनी कमनसीबी का सब हाल कह सुनाया और निवेदन किया कि हे दीनदयाल! ऐसी कृपा कीजिए जिससे यह व्यथा दूर होवे।

साधु महाराज विधिपूर्वक चौतीसवाँ और पैतीसवाँ काव्य विधि सहित सिखाकर विहार कर गए। राजा ने तीन दिन बडी कठिन तपस्या की तब चक्रेश्वरी नाम की शासनदेवी प्रकट हुई। देवी ने कहा–"राजन्! माग क्या मागता है?" राजा बोले–"माँ! मेरी सहायता करो। मेरी सारी व्यथा हरो।" देवी आशीर्वाद देकर अपने गन्तव्य को गई और राजा ने वैसा ही किया जैसा देवी ने बताया था। राजा की मनोकामना सफल हुई।

## (२८)
## करनी का फल

### श्लोक ३६

पटना के राजा धाड़ीवाहन के एक पुत्री थी। पुत्री का नाम सुरसुन्दरी था। जैसा उसका नाम था वैसी ही वह रूपवान और मनोहर भी थी। परन्तु जिन धर्म मे उसकी आस्था नहीं थी। उसे अपने सुन्दर रूप का बडा गुमान था। अपने रूप के अभिमान के मारे वह औरो को तिनके के समान समझती थी। [illegible]

से वह उनके सिर चढ गई थी और उन दोनो की कुछ परवाह भी नही करती थी। यद्यपि सुरसुन्दरी बडी ढीठ थी फिर भी माता-पिता को बहुत प्यारी थी।

एक दिन वह पालकी मे चढकर वन-भ्रमण को गई और बहुत सी सहेलियो को साथ ले गई। वहाँ पर उसने एक तपस्वी ध्यानस्थ श्रमण को देखा, उनकी कृशकाया को देखकर सहेलियाँ उपहास करने लगी –जब इनकी खुद ही की यह दशा है तो ये दूसरो को क्या दे सकते है? सुख की आशा से इनकी वन्दना करना घृत के लिए पानी का विलोवना है।

कहते है कि करनी का फल तत्काल मिल जाता है। सो सुरसुन्दरी को भी ऐसा ही हुआ। उसका शरीर कुरूप हो गया।

राजा अपनी पुत्री की यह करतूत और दशा देखकर बहुत चिन्तित हुए। वह अपने गुरुदेव के पास पहुँचे। उनसे उपाय पूछा। गुरुदेव ने एक घडा पानी मगवाया और भक्तामर का छत्तीसवॉ काव्य पढ दिया। तब राजा से कहा कि बाई को इस पानी मे स्नान कराओ। सुरसुन्दरी ने अपनी करनी पर पश्चात्ताप एव प्रायश्चित्त किया और मत्रित जल से स्नान किया। उसका शरीर पहले की तरह सुन्दर हो गया।

सुरसुन्दरी की आस्था जैन धर्म पर हो गई और उसने आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया।

## (२९)

## मनोकामना पूर्ण हुई

### श्लोक ३७

कोशाम्बी के नगरसेठ जिनदास का बडा व्यापार था। लेकिन वक्त ने तेवर बदले। उन्हे व्यापार मे घाटा हो गया। सारी सम्पत्ति खो बैठे। वे व्याकुल हुए और खूब रोये। मित्रो ने समझाया, उन्हे सहायता भी की। लेकिन होनी को कौन टाले? भाग्य ने पुन टक्कर दे दी। आखिर एक जैन साधु के पास नगर सेठ का पहुँचना हुआ। कहते है कि सत का सान्निध्य सम्बल देता है। अपने मन की व्यथा उन्हे कह सुनाई। उन साधु ने उन्हे भक्तामर स्तोत्र का सैतीसवॉ काव्य सिखा दिया और

नगरसेठ यात्रा पर थे कि रास्ते मे चोर मिले जो राजा के यहाँ से हीरे-जवाहरातो को चुरा लाये थे। नगर सेठ से बोले–"सेठजी! इस माल को खरीदकर हमे नगदी रुपया दे दे।" नगरसेठ ने समझ लिया कि यह माल चोरी का है। उन्होने चोरो को देवी द्वारा दी गई अगूठी दिखाई और फटकार लगाई। नतीजा यह हुआ कि चोर भाग लिए। साथ ही सारी सम्पदा भी छोड गए। बहुत कुछ सोच विचार कर वे राजा के दरवार मे सम्पूर्ण दौलत लेकर गये और उन्हे सौपकर सव समाचार सुनाया। राजा ने अपना सव माल पहचान लिया और सेठ की ईमानदारी से प्रसन्न होकर सारी सम्पदा उन्हे सौपकर वडी प्रशसा की। मत्र से नगरसेठ पुन सम्पत्ति और पद के अधिकारी बन गए।

## (३०)

## फिर राजा बना

श्लोक ३८

वीरपुर के राजा सोमदत्त का एकमात्र पुत्र सुखानन्द दुराचारी और जुआरी था। उसकी कुसगति और दुराचार को देखकर पडौस के राजा ने सोमदत्त की सारी सम्पत्ति लुटवाली ओर उन्हे गद्दी से उतार दिया। यहाँ तक कि उन्हे भोजन तक के लिए मुँहताज कर दिया। पहले तो पुत्र कुपुत्र दूसरे दरिद्रता ने बेचारे सोमदत्त को कही का न रखा।

सयोग से एक तपस्वी जैन मुनि के दर्शन हुए। उनसे अपनी रामकहानी कह सुनाई। जेन श्रमण ने भक्तामर का अडतीसवॉ काव्य विधिपूर्वक सिखा दिया। सोमदत्त ने उसकी भली प्रकार से आराधना की और मत्र सिद्ध करके धन की चिन्ता मे हस्तिनापुर गये।

हस्तिनापुर मे सोमदत्त क्या देखते हैं कि राजा का प्रचण्ड और उद्दण्ड मदमत्त हाथी महावतो की असावधानी से छूट पडा और शहर मे प्रवेश करके उत्पात मचाने लगा। सेकडो नर-नारियो को उसने चीर डाला। हजारो दुकाने कुचल डालीं, बहुत से वृक्ष उखाडकर फेक दिए। लोगो का घर से बाहर निकलना असम्भव हो गया। उसे वश मे करने के कई उपाय किए गए लेकिन सव वेकार। आखिर राजा ने ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो कोई हाथी को वश मे करेगा उसको मे अपनी पुत्री व्याह दूगा तथा चौथाई राज्य सौप दूगा।

सोमदत्त ने जव यह सुना तो उन्होने भक्तामर का अडतीसवे काव्य का पाठ किया और उस हाथी का कान पकड कर उस पर सवार होकर राजा के दरवार मे जा पहुँचे। राजा वहुत प्रसन्न हुए लेकिन सोमदत्त के जाति-कुल से अपरिचित होने के कारण अपनी पुत्री न देकर मनमाना धन देने का निश्चय किया। जव

राजकुमारी मनोरमा की दृष्टि सोमदत्त पर पडी तो मदन के जोर से वह विह्वल हो गई और होश गँवा बेठी। बेहोश होकर वह भूमि पर गिर पडी।

जेसे-तेसे राजा एक आफत से मुक्त हुए कि दूसरी मुसीवत का सामना हो गया। राजवेद्य ने नाना उपचार किए पर मूर्च्छा बढती ही गई। आखिर राजा ने फिर घोपणा करवा दी जो कोई मनुष्य मेरी पुत्री की मूर्च्छा को दूर करेगा उसे अपनी पुत्री के साथ आधा राज्य सौप दूगा।

सोमदत्त ने फिर अडतीसवॉ काव्य उच्चारा और राजा की कन्या के पास गए। राजकन्या उन्हे देखते ही सचेत हो गई और बोली—“यहॉ भीड क्यूँ जमा है? मुझे स्नान कराओ, भूख लगी है।”

यह चमत्कार देखकर मत्री ने सोमदत्त का परिचय पूछा। तव सोमदत्त ने सविस्तार हाल सुनाया। राजा प्रसन्न हुआ, उसने अपनी पुत्री का हाथ सोमदत्त को सौपकर अपना आधा राज्य भेट कर दिया।

भक्तामर के प्रभाव से कुवेर जैसी सम्पदा और इन्द्राणी जैसी राजकन्या पाकर राजा सोमदत्त का हर्ष के ठिकाना न रहा।

## (३९)
## विघ्न टल जाते हैं

### श्लोक ३९

श्रीपुर मे देवराज नाम के जोहरी जवाहरात का व्यापार करते थे। उन्होंने अपने गुरुदेव से भक्तामर का अच्छा अभ्यास किया। देवराज का पुत्र अमृतचन्द पितृभक्त था। एक दिन देवराज ने व्यापार के लिए रत्नद्वीप जाने का मन वनाया। जाने से पहले देवराज ने अपने पुत्र अमृतचन्द्र को घर की चोकसी की हिदायत दी। अपने साथियो के साथ देवराज रत्नद्वीप को निकल पडे।

चलते-चलते वे राह भूल गए। भयकर जगल मे जा पहुँचे जहाँ हाथी, रीछ, बन्दर, सर्प, सिह आदि का बोलबाला था। यकायक एक दहाडता हुआ सिह मानो रास्ता रोककर सामने खडा हो गया। सब लोगो के होश उड गए। करें तो करें क्या? ऐसे मे धर्म ही रक्षक होता है। देवराज ने भक्तामर का उनतालीसवॉ काव्य स्मरण किया। जिसके प्रभाव से वह सिह दुम हिलाता हुआ देवराज पर भक्ति दर्शाने लगा।

देवराज रत्नद्वीप की यात्रा करके श्रीपुर सकुशल लौट आए। राजा को यात्रा का वृतान्त वताते हुए देवराज ने अच्छे-अच्छे गजमुक्ता उन्हे भेट किए। यह सही है कि भक्तामर के प्रभाव से कोटि-कोटि विघ्न क्षणभर मे टल जाते है।

## (३२)
## और आग शांत हो गई

### श्लोक ४०

पोदनपुर के लक्ष्मीधर सेठ का जैनधर्म पर दृढ विश्वास था। उन्होने एक जैन मुनि से भक्तामर काव्य को विधिपूर्वक सीखा था। गणधर नाम का उनका सुशील एव आज्ञाकारी पुत्र था। एक दिन सेठ ने पुत्र को समझाते हुए कहा–"बेटा! न्यायपूर्वक उद्योग करके धन का सचय करना गृहस्थो का कर्त्तव्य है, क्योकि ससार मे निर्वाह का दारमदार धन ही पर निर्भर है। अतएव मै व्यापार के लिए सिहल द्वीप जा रहा हूँ। तुम घर-व्यापार की देखभाल भलीभॉति करना।"

लक्ष्मीधर सेठ अपनी वणिक मण्डली के साथ माल की गाडियॉ खच्चर आदि पर भरवाकर सिहलद्वीप को चल दिये। रास्ते मे एक जगह डेरा डाले पडे हुए थे ओर रसोई वना रहे थे कि अकस्मात उनके डेरे मे आग लग गई। चहुँ ओर घास के झोपडे होने से अग्नि ने वडा भयकर रूप धारण किया। हा-हाकार मच गया। सेठ के सभी साथी रोने जो लगे थे। श्रद्धालु सेठ ने धैर्य नही खोया। उसने भक्तामर का चालीसवॉं काव्य विधिवत स्मरण-जपना आरम्भ किया। शासनदेवी चक्रेश्वरी प्रकट हुई। देवी ने गिलासभर पानी देकर कहा कि 'इसे जहॉ-तहॉ छिडक दो।' लोगो ने वेसा ही किया जिससे तुरन्त आग शान्त हो गई। लोग यह कौतुक देख वहुत विस्मित हुए। सवने सेठ लक्ष्मीधर का वडा उपकार माना।

धर्म की महिमा का क्या कहना?

## (३३)
## सर्प फूलों का गजरा बना

### श्लोक ४१

नर्मदा नदी के किनारे सर्वदापुर नगर मे एक धनाढ्य सेठ रहते थे। उनके समान नगर मे ओर कोई लक्ष्मीवान नही था। नाम उनका गुणचन्द था। उनके एक पुत्री थी जो रूप ओर लावण्य से भरपूर थी। नाम उसका दृढ़व्रता था। उसने अपने गुरुदेव से भक्तामर का अध्ययन ऋद्धि-मत्र के साथ किया था। जव दृढ़व्रता व्याह के योग्य हुई तो शिरपुर नगर निवासी सेठ कर्मचन्द्र के पुत्र श्रीदत्त के साथ उसका व्याह कर दिया।

श्रीदत्त धनवान अवश्य थे किन्तु धर्म-कर्म से विल्कुल शून्य थे। दृढव्रता ससुराल मे व्याप्त अधार्मिक वृत्ति देख चकित हुई। जव रात्रि के दस वज गये तव दृढव्रता की सास ने भोजन के लिए उससे आग्रह किया। दृढव्रता ने अपनी चर्या सासुजी को वताई–"हे माता! रात्रि भोजन, अनछाना पानी, कन्दमूल का भक्षण ये वाते धर्म के प्रतिकूल है। मैने तो अपने गुरुदेव के समक्ष इन सवका सकल्प ले लिया है अतएव रात्रि मे भोजन करना मेरे लिए असम्भव है।"

सास ओर पति ने वहुतेरा उसे समझाया लेकिन दृढव्रता अपने नियम से लेशमात्र भी नही डिगी। सभी परिजन दृढ़व्रता से रुष्ट हुए ओर उसे मार डालने की तजवीज करने लगे। एक दिन श्रीदत्त ने सपेरे से एक वडा भयकर सॉप घडे मे रखकर मगवाया ओर अपने शयनकक्ष मे चुपचाप रखवा दिया। रात्रि के एकात क्षणो मे श्रीदत्त ने दृढव्रता से कहा–"प्रिये! उस घडे मे एक फूलो का हार रखा है उसे उठा लाओ।"

भोली दृढ़व्रता इस कपट से अनभिज्ञ थी। वह सीधी घडे के पास चली गई ओर हाथ डाल दिया। छली श्रीदत्त पलग पर लेटा-लेटा ही सोच रहा था कि अभी ही इसका काम तमाम हुआ जाता है। वस दूसरी शादी कर लेगे। आदमी सोचता कुछ है ओर होता कुछ ओर है। दृढ़व्रता ने घडे के अन्दर की वस्तु हाथ से पकड़कर निकाल ली तो देखती क्या है कि वहुत ही वढिया फूलो का गजरा है। वह उसे हाथ में लेती आई ओर वडे उछाह से अपने प्राणनाथ के गले मे डाल दिया। वह पुष्पमाला श्रीदत्त के गले मे पडते ही पुन भयकर सर्प हो गई। श्रीदत्त को उसने डस लिया। वह मूर्च्छित हो गया। फिर क्या था? हा-हाकार मच गया।

सारा दोष दृढव्रता पर आ गया। राजा ने तलव किया। दृढ़व्रता ने न्याय की गुहार करते हुए कहा–"राजन! मेरे ऊपर झूठा कलक आवेगा तो श्रीमान् के ऊपर अपने प्राण विसर्जन करूँगी।" राजा ने पता लगाया तो दृढव्रता को निर्दोष पाया। लेकिन राजा आश्चर्य मे था कि 'सर्प गजरा कैसे वना?'

तव दृढव्रता ने कहा–"राजन्! यह सव भक्तामर के इकतालीसवे काव्य का प्रभाव है। इस मत्र को पढते ही जव मैने घडे मे हाथ डाला तो मैने वहा फूलो का गजरा पाया।"

## (३४)

## चतुरगिणी सेना सजा दो

### श्लोक ४२-४३

मथुरा के राजा रणकेतु को धर्म और नीति का ज्ञान कुछ भी न था। एक दिन उनकी भार्या ने कहा–"प्राणनाथ! आपका छोटा भाई गुणवर्मा आपसे द्वेष भाव रखता है। आप तो इस तरफ कुछ ध्यान नही देते पर वह आस्तीन का सॉप है। कभी न कभी आपको डस लेगा। आपसे राज्य छुडा लेगा।"

गुणवर्मा यद्यपि सुशील, जिनभक्त था उसका अधिकाश समय भक्तामर के मत्र शास्त्रो की क्रियाओ को सीखने मे बीत जाता था। राज्य की ओर उसका ध्यान भी न था। परन्तु राजा रणकेतु के हृदय मे उनकी मूर्ख रानी की बात ऐसी समा गई कि उन्हे गुणवर्मा सा भाई भी शत्रु रूप भासने लगा। वे उसे महल से निकालने की चिन्ता मे रहने लगे। एक दिन उन्होने अपने मत्री से कहा "मत्री! आप गुणवर्मा को देश निकाला दे दे, ऐसा किए बिना मुझे चैन नही है।"

राजा रणकेतु की ऐसी ओछी बात सुनकर मत्री आश्चर्य मे पड गए। उन्होंने राजा को बहुतेरा समझाया परन्तु राजा के मन को कोई बात नही भाई। वह मंत्री पर नाराज हो पडे। आखिर मे राजा ने गुणवर्मा से कह दिया कि–'हमारे देश से निकल जाओ।'

राजा को इतना कहते देर हुई लेकिन गुणवर्मा को महल छोडने मे देर नही लगी। वे अपने भाई के राज्य से दूर वन की गुफा मे निवास करने लगे। राजा को चैन कहाँ? द्वेष उनके हृदय मे जो घर कर गया था। अपने कर्मचारियो को भेजकर गुणवर्मा की गतिविधि का पता लगवाया।

कर्मचारी आकर बोले–"महाराज! वे वन मे रहते हैं। एकान्त मे प्रभु भक्ति करते है।" यह सुनकर राजा ने ओर ही कल्पना कर डाली कि यह मुझे मारने का कोई जादू टोना सिद्ध कर रहा है। इसलिए वे उसे मार डालने के लिए बडी भारी सेना लेकर वहाँ गए। जब गुणवर्मा ने सजी हुई सेना राजा रणकेतु की देखी तो उन्होंने भक्तामर का बयालीसवॉ ओर तेतालीसवॉ काव्य की सविधि आराधना की जिससे शासनदेवी चक्रेश्वरी प्रकट होकर बोली–"वत्स! तेरे मन मे जो इच्छा हो सो कह।" गुणवर्मा ने कहा–'माँ! मेरे लिए एक चतुरंगिणी सेना सजा दो। एक बार भाई से लडूँगा तब फिर सयम का व्रत लूँगा।"

ऐसा ही हुआ। दोनो ओर से रणभेरी बजने लगी, खूब घोर युद्ध हुआ ओर गुणवर्मा के दल ने राजा रणकेतु को बॉध लिया।

गुणवर्मा ने देवी से प्रार्थना की– माँ! ये मेरे ज्येष्ठ भ्राता है इनका अनादर नहीं होना चाहिए।" रणकेतु ने पश्चात्ताप किया ओर भाई को गले लगाया। गुणवर्मा ने जिनदीक्षा ले ली।

## (३५)
## जब जलदेवी ने जहाज रोका

**श्लोक ४४**

वहुत पहले तामली नगर मे तामलिप्त नाम के एक सेठ रहते थे। जैनधर्म मे उनकी अच्छी रुचि थी और उन्होने अपने गुरुदेव से भक्तामर के काव्य यत्रो का अध्ययन भी किया था। एक दिन वे व्यापार हेतु वहुत सा माल जहाज मे लदवाकर अपने साथियो के साथ विदेश-रवाना हो गए। धर्म के प्रभाव से कोई विघ्न नही आया। यहॉ से जो वस्तुएँ वे ले गए थे वहॉ वेच दी और वहां से वहुत से हीरा जवाहरात खरीदकर जहाज भर लिया।

व्यापार मे सभी को लाभ हुआ। सवके सव फूले नही समा रहे थे। धन सचय की चर्या मे इतने मशगूल हो गये कि उन्हे नित्यकर्म-प्रभुस्मरण का भी ध्यान न रहा। एक जलवासिनी देवी ने जहाज रोक दिया। वहुत प्रयत्न हुए। जहाज जरा भी नही हिला। मल्लाह वोले–"सेठजी,जलदेवी का कोप हुआ है। पशुवलि देनी होगी।" यह सुनकर तामलिप्त सेठ वोला–"सुनो! मे ऐसा कदापि नही होने दूगा। मे प्राणीवध के सर्वथा विरुद्ध हूँ।" ससारी जीव सुख मे ईश्वर को भूल जाता हे लेकिन दु ख मे उसे याद करने लगता हे।

सेठ ने भक्तामर का चवालीसवॉ काव्य सविधि पढ़ना शुरू किया। मत्र का प्रभाव होता हे, सो हुआ। शासनदेवी चक्रेश्वरी प्रकट होती हुई वोली–"सेठ कहो, कौन सा सकट आन पडा? जल्दी वताओ।" सेठ हाथ जोडकर प्रार्थना करने लगे– हे माता! किसी व्यन्तरी ने मेरा जहाज रोक रखा हे, चलाने पर भी नही चलता।

फिर क्या था? इतना सुनते ही चक्रेश्वरी ने जहाज को एक लात मार दी, लात लगते ही वह जलवासिनी खूब चिल्लाई–"रक्षा करो। रक्षा करो। म आज से हिंसा नही कराऊँगी।"

कृपालु सेठ ने भी उसे क्षमा कर दिया।

## (३६)
## रोगी निरोगी हुआ

आया ही था कि दैवयोग से उसकी पूज्या माता विमलमती का स्वर्गवास हो गया। इस वियोग से राजा और पुत्र दोनो ही दु:खी हुए। बहुत रोये। आखिर राजा ने दूसरा ब्याह रचाया।

राजा की नयी रानी कमला स्वभाव से कुटिला और निर्दयी थी। समय पाकर उसके भी एक पुत्र हुआ। नाम श्रीचन्द्र रखा गया। उसे भी विद्याध्ययन कराया गया। नई रानी कमला के हृदय मे द्वेष भाव पनपा। वह सोचा करती कि यदि हसराज मर जाये तो मेरे पुत्र के रास्ते का काटा हट जायेगा।

एक दिन राजा दिग्विजय को निकले। हसराज को कमला रानी के भरोसे छोड गए। रानी कमला को अपने मन की मुराद पूरी करने का अवसर मिल गया। उसने भोजन मे विष मिलाकर हसराज को खिला दिया। जिससे थोडे ही समय मे हसराज का शरीर पीला पड गया। वह नितान्त अशक्त हो गया। वात, कफ, खॉसी से पीडित रहने लगे। हसराज अपनी विमाता की यह करतूत समझ गए पर उससे वे कह भी क्या सकते थे और उससे लाभ भी क्या था? राजमहल छोड देना ही हसराज को उचित लगा। वे निकल पडे और मानगिरि जा पहुँचे।

मानगिरि के राजा की कलावती नाम की सुशिक्षिता और रूपवती कन्या थी। एक दिन राजा ने अपनी कन्या से पूछा—"बेटी! तुम हमारे घर मे सुख चैन से रहती हो। यह हमारे प्रसाद से है या तुम्हारे भाग्य से।"

बुद्धिमती कलावती ने उत्तर दिया—"पिताजी! यह मेरे कर्मों का प्रसाद है।"

कलावती के इस उत्तर से राजा कुपित हुए। उसने मत्री के द्वारा रोगी हसराज को बुलाकर उसके साथ विवाह करा दिया। इतना ही नहीं उन्हें महल से निकाल दिया।

हसराज और कलावती दोनो वन मे विचरण करने लगे। वहाँ उन्हें एक जैन मुनि मिले। उनसे रोगमुक्त होने का उपाय पूछा। कृपालु मुनि ने भक्तामर का पतालीसवॉ काव्य उसे सिखा दिया। हसराज ने सात दिन तक योगासन मे बैठकर मत्र की आराधना की जिसके प्रसाद से वे बिल्कुल निरोग और कामदेव सदृश रूपवान हो गए। दिग्विजय करके जब राजा नृपशेखर उज्जेन वापिस आये तो कमलारानी से पूछा कि "प्रिय हसराज कहॉ है?" कमला ने उत्तर दिया कि 'आपने उसका विवाह नही किया था तो किसी कुलटा को लेकर कहीं चला गया है।'

राजा नृपशेखर ने जहॉ तहॉ हसराज की खोज की। आखिर उन्हे समाचार मिला कि हसराज मानगिरि के वन विहार मे है। साथ मे कोई सुन्दर सी स्त्री भी है। नृपशेखर के हर्ष का ठिकाना न रहा। कमलारानी की करतूत से उन्हें वैराग्य हो गया। मानगिरि के राजा को भी अपनी गलती का अहसास हुआ।

## (३७)

# सब बन्धन खुल गए

### श्लोक ४६

अजमेर के राजा कुँवरपाल वडे न्यायशील ओर धर्मात्मा थे। पुण्योदय से उन्हें पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। नाम पुण्यपाल रखा गया। राजा ने पुण्यपाल की शिक्षा का अच्छा ध्यान रखा था। पुण्यपाल ने राजगुरु से लौकिक ज्ञान के अतिरिक्त भक्तामर के मत्र और यत्र का खूव अध्ययन किया था। एक दिन जोगिनपुर के वादशाह सुलतान ने अजमेर पर हमला वोल दिया। राजा कुँवरपाल ने ऐलान किया कि "ऐसा कोन शूरवीर हे जो सुलतान को जीवित पकड लाएगा। मेरे राज्य मे ऐसा कोई ह तो सामने आए।"

यह सुनकर पुण्यपाल की भुजा फडक उठी वह राजा से आज्ञा पाकर सुलतान को पकडने चल दिया। दोनो तरफ की सेना मे घोर सग्राम हुआ। अन्त मे सुलतान की विजय हुई। सुलतान ने पुण्यपाल को कैद कर लिया। भोजन-पानी वद करके खूव तकलीफ दी।

इस प्रकार कष्ट भोगते भोगते दो-दिन दो राते वीत गईं। तव तीसरे दिन पुण्यपाल ने भक्तामर के छियालीसवे काव्य का स्मरण किया, तत्काल ही शासनदेवी प्रकट हुई ओर उनके बन्धन खुल गये। फिर क्या था सवेरा होते ही कुमार पुण्यपाल दरवार मे जा पहुँचे। सुलतान सकते मे आ गया। उसने जेलर को तलव किया? "इसे किसने छोड दिया ओर किसके हुक्म से छोडा हे?"

जेलर विस्मय मे था उसने कहा—"जहाँपनाह! यह तो कोई चमत्कार लगता हे, नहीं तो किसकी ताकत ह जो हुजूर की परवानगी के वाहर कदम रख सके?" तव सुलतान ने स्वय अपने हाथ मे पुण्यपाल को खूव कसकर वाँधा ओर जेलखाने मे सख्ती से वन्द कर दिया। जव रात्रि के वारह वजे का घण्टा वजा पुण्यपाल ने

## स्वर अक्षरों की अद्भुत शक्ति

व्यजन और स्वरो से मिलकर मत्र-बीज बनते हैं।
बीज-शक्ति के ही प्रभाव से, मत्र-भाव छनते है॥
पृथ्वी-पावक-पवन-पय नभ, प्रणव बीज की माया।
सारस्वत-भुवनेश्वरी के बीजो को समझाया॥

अ अव्यय सूचक, शक्ति प्रदायक, प्रणव बीज का कर्ता।
शुद्ध बुद्ध सद्ज्ञान रूप, एकत्व आत्म मे भर्ता॥

आ सारस्वत का जनक यही है, शक्ति बुद्धि परिचायक।
माया बीज सहित होता है, यह धन-कीर्ति प्रदायक॥

इ गति का सूचक, अग्नि-बीज का, जनक लक्ष्मी का साधक।
कोमल कार्य सिद्ध करता है, कठिन कार्य मे बाधक॥

ई अमृत-बीज यह स्तम्भक है, कार्य साधने वाला।
सम्मोहक, जृम्भण करता, "ई" ज्ञान बढाने वाला॥

उ उच्चाटन का मत्र-बीज यह, बहुत शक्तिशाली है।
उच्चाटन का श्वास नली से शक्ति मारने वाली है॥

ऊ उच्चारण के सम्मोहन के बीजो का यह मूल मत्र है।
बहुत शक्ति को देने वाला, यह विध्वसक कार्य तत्र है॥

ऋ ऋद्धि-सिद्धि को देने वाला, शुभ कार्यो मे उपयोगी।
बीजभूत इस अक्षर द्वारा कार्य सिद्धि निश्चित होगी॥

लृ वाणी का सहारक है यह, किन्तु सत्य का सचारक।
आत्म-सिद्धि मे कारण बनता, लक्ष्मी बीज यही कारक॥

ए पूर्ण अटलता लाने वाला, पोषन सवर्द्धन करता।
'ए' बीजाक्षर शक्ति युक्त हो सभी अरिष्ट हरण करता॥

ऐ वशीकरण का जनक बीज यह, ऋण विद्युत का उत्पादक।
वारि बीज को पैदा करता, यह उदात्त सुख सम्पादक॥
इसके द्वारा ही होता है, शासन देवो का आह्वान।
कितना ही हो कठिन काम, पर इससे हो जाता आसान॥

ओ लक्ष्मी पोषक, माया बीजक, सुष्ठु वस्तुएँ करे प्रदान।
अनु-स्वरान्त का सहयोगी है, कर्म-निर्जरा-हेतु प्रधान॥

औ मारण मे या उच्चाटन मे, शीघ्र कार्य-साधक बलवान।
निरपेक्षी है स्वय बीज यह, कई बीजो का मूल प्रधान॥

अं "अं" अभाव का सूचक है, शून्याकाश बीज परतत्र।
मृदुल शक्तियो का उद्घाटक, कर्माभावी है यह मत्र॥

अः शान्ति-बीज में प्रमुख बीज यह, रहता नहीं स्वय निरपेक्ष।
सहयोगी के साथ साधता, कार्य हमारे सभी यथेच्छ॥

## व्यञ्जन अक्षरों की अद्भुत शक्ति

क् (व्यजन) + अ (स्वर) ="क" वीजाक्षर (मत्र-वीज)
भोग और उपभोग जुटावै, साधै यही काम-पुरुषार्थ।
यही प्रभावक शक्ति वीज है, सततिदायक वर्ण यथार्थ॥

ख् (व्यजन) + अ (स्वर) ="ख" वीजाक्षर (मत्र-वीज)
उच्चाटन वीजो का दाता, यह आकाश-बीज है एक।
किन्तु अभाव कार्यों के हित, कल्पवृक्ष सम है यह नेक॥

ग् (व्यजन) + अ (स्वर) ="ग" वीजाक्षर (मत्र-वीज)
पृथक-पृथक यदि करना चाहो, तो इसका उपयोग करो।
प्रणव और माया वीजो का, पर इससे सयोग करो॥

घ् (व्यजन) + अ (स्वर) ="घ" वीजाक्षर (मत्र-वीज)
यह स्तम्भक बीज विघ्न का, मारण करने वाला है।
सम्मोहक वीजो का दाता, रोक मिटाने वाला है।

ङ् (व्यजन) + अ (स्वर) ="ङ" वीजाक्षर (मत्र-वीज)
स्वर से मिलकर फल देता है, करता है रिपुओ का नाश।
यह विध्वसक वीज जनक है, सभी मातृकाओ मे खास॥

च् (व्यजन) + अ (स्वर) ="च" वीजाक्षर (मत्र-वीज)
उच्चाटन वीजो का दाता, खड शक्ति वतलाता है।
अगहीन है स्वय स्वरो पर, अपना फल दिखलाता है॥

छ् (व्यजन) + अ (स्वर) ="छ" वीजाक्षर (मत्र-वीज)
छाया सूचक वन्धन-कारक, माया का सहयोगी है।
जल वीजो का जनक यही है, मृदुल कार्य फल भोगी है॥

ज् (व्यजन) + अ (स्वर) ="ज" वीजाक्षर (मत्र-वीज)
आधि-व्याधि का उपशम करके, साधे सारे कार्य नवीन।
यह आकर्षक वीज जनक है, शक्ति बढ़ाने में तल्लीन॥

झ् (व्यजन) + अ (स्वर) ="झ" वीजाक्षर (मत्र-वीज)
इस पर रेफ लगा दोगे तो, आधि-व्याधि हो जाय समाप्त।
श्री वीजो का जनक यही है, शक्ति इसी से होती प्राप्त॥

ञ् (व्यजन) + अ (स्वर) ="ञ" वीजाक्षर (मत्र-वीज)
यही जनक है मोह वीज का, स्तम्भन का माया का।
यही साधना का अवरोधक, वीजभूत है काया का॥

ड् (व्यजन) + अ (स्वर) ="ड" बीजाक्षर (मत्र-बीज)
शासन देवी की शक्ती को, यही फोडने वाला है।
निम्न कोटि की कार्य सिद्धि को, यही जोडने वाला है॥
जड की क्रिया साधना है यह, हो खोटे आचार-विचार।
पच-तत्त्व के भौतिक सयोगो का करता है विस्तार॥

ढ् (व्यजन) + अ (स्वर) ="ढ" बीजाक्षर (मत्र-बीज)
यह निश्चित है माया बीजक, एव मारण बीज प्रधान।
शान्ति विरोधी मूल मत्र है, शक्ति बढ़ाने मे बलवान॥

ण् (व्यजन) + अ (स्वर) ="ण" बीजाक्षर (मत्र-बीज)
नभ बीजो मे यही मुख्य है, शक्ति प्रदायक स्वय प्रशान्त।
ध्वसक बीजो का उत्पादक, महाशून्य एव एकान्त॥

त् (व्यजन) + अ (स्वर) ="त" बीजाक्षर (मत्र-बीज)
आकर्षक करवाने वाला, साहित्यिक कार्यों में सिद्ध।
आविष्कारक यही शक्ति का, सरस्वती का रूप-प्रसिद्ध॥

थ् (व्यजन) + अ (स्वर) ="थ" बीजाक्षर (मत्र-बीज)
मगल कारक लक्ष्मी बीजो का, बन जाता सहयोगी।
अगर स्वरो से मिल जाये तो, मोहकला जाग्रत होगी॥

द् (व्यजन) + अ (स्वर) ="द" बीजाक्षर (मत्र-बीज)
आत्मशक्ति को देने वाला, वशीकरण यह बीज प्रधान।
कर्म-नाश मे उपयोगी है, करै धर्म आदान-प्रदान॥

ध् (व्यजन) + अ (स्वर) ="ध" बीजाक्षर (मत्र-बीज)
धर्म साधने मे अचूक है, श्री क्लीं करता धारण।
मित्र समान सहायक है यह, माया बीजो का कारण॥

न् (व्यजन) + अ (स्वर) ="न" बीजाक्षर (मत्र-बीज)
आत्म-सिद्धि का सूचक है यह, वारि तत्व रचने वाला।
आत्म-नियन्ता वृष्टि सृष्टि मे, एक मात्र नचने वाला॥

प् (व्यजन) + अ (स्वर) ="प" बीजाक्षर (मत्र-बीज)
परमातम को दिखलाता है, विद्यमान इसमे जल-तत्त्व।
सभी कार्यों मे रहता है, इसका अपना अलग महत्त्व॥

फ् (व्यजन) + अ स्वरझ ="फ" बीजाक्षर (मत्र-बीज)
वायु और जल तत्त्व युक्त है, वडे कार्य कर देता सिद्ध।
स्वर को जोडो रेफ लगा दो, हो प्रध्वसक यही प्रसिद्ध॥
इसके साथ अगर फट् बोलो, तो उच्चाटन हो जाएगा।
कठिन कार्य भी सफल करेगा, विघ्न शमन हो जाएगा॥

ब् (व्यजन) + अ (स्वर) =' ब" बीजाक्षर (मत्र-बीज)
अनुस्वार इसके मस्तक पर आकर विघ्न विनाश करे।
स्वय सफलता का सूचक बन, सबको अपना दास करे॥

भ् (व्यजन) + अ (स्वर) = "भ" वीजाक्षर (मत्र-वीज)
मारक एव उच्चाटक है, सात्विक कार्य निरोधक है।
कल्याणो से दूर साधना, लक्ष्मी वीज निरोधक है॥

म् (व्यजन) + अ (स्वर) = "म" वीजाक्षर (मत्र-वीज)
लौकिक एव पारलौकिकी सफलताएँ इससे मिलती।
यह वीजाक्षर सिद्धि प्रदाता, सतति की कलियाँ खिलती॥

य् (व्यजन) + अ (स्वर) = "य" वीजाक्षर (मत्र-वीज)
मित्र मिलन मे, इष्ट प्राप्ति मे, यह वीजाक्षर उपयोगी।
ध्यान-साधना मे सहकारी, सात्विकता इससे होगी॥

र् (व्यजन) + अ (स्वर) = "र" वीजाक्षर (मत्र-वीज)
अग्नि-वीज यह कार्य-प्रसाधक, शक्ति सदा देने वाला।
जितने भी है प्रमुख वीज यह, उन सव को जनने वाल॥

ल् (व्यजन) + अ (स्वर) = "ल" वीजाक्षर (मत्र-वीज)
लक्ष्मी लावे, मगल गावे, श्री वीज का सहकारी।
लाभ करावे, सुख पहुँचावे, परम सगोत्री उपकारी॥

व् (व्यजन) + अ (स्वर) = "व" वीजाक्षर (मत्र-वीज)
भूत पिशाचिन-शाकिन, डाकिन सवको दूर भगाता है।
ह् र् एव अनुस्वार से मिल जादू सा दिखलाता है॥
लौकिक इच्छा पूरी करता, सव विपत्तियाँ देता रोक।
मगल-साधक सारस्वत है, आकर्षित होता सव लोक॥

श् (व्यजन) + अ (स्वर) = "श" वीजाक्षर (मत्र-वीज)
शान्ति मिला करती है इससे, किन्तु निरर्थक है यह वीज।
स्वय उपेक्षा धर्मयुक्त है, अति साधारण यह नावीज॥

ष् (व्यजन) + अ (स्वर) = "ष" वीजाक्षर (मत्र-वीज)
आह्वान वीजो का दाता, है जल-पावक स्तम्भक।
आत्मोन्नति से शून्य भयकर, रुद्र-वीज का उत्पादक॥
रौद्र और वीभत्स रसो मे भी प्रयुक्त यह होता है।
ध्वनि सापेक्ष ग्रहण करता है, सयोगी सुख वोता है॥

स् (व्यजन) + अ (स्वर) = "स" वीजाक्षर (मत्र-वीज)
सर्व मनोहित साधक है यह, सव वीजो मे अति उपयुक्त।
शान्ति प्रदाता कामोत्पादक, पौष्टिक कार्यों हेतु प्रयुक्त॥
ज्ञानावरणी और दर्शनावरणी कर्म हटाता है।

स्व० सूरज देवी की पुण्य स्मृति
में बृजरतन पारख द्वारा सप्रेम भेंट

समर्पण

परम श्रद्धास्पद, त्याग, सेवा, सरलता की जीवन्त मूर्ति
राष्ट्रसन्त, प्रवर्त्तक गुरुदेव

**भण्डारी श्री पद्मचन्द्र जी महाराज**

के पावन-चरणो मे सविनय समर्पित

—*सुयश मुनि*